सृष्टि रहस्य, कर्म का सिद्धान्त तथा यज्ञ तत्त्व

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम,
भक्तानन्द शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- श्री सुशील कुमार ताम्बी
  प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
  A/3 आर्य नगर
  एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
  मुरलीपुरा, जयपुर 302039
  फोन : 0141-2233765 मो. : 09829547773
- **ज्ञान गंगा प्रकाशन**
  पाथेय भवन,
  बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
  दूरभाष : 0141-2371563
- **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना**
  आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
  नई दिल्ली 110055
  फोन : 011-23675667
- **हिन्दू राइटर्स फोरम**
  129-बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स (एम.आई.जी.)
  राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027
- **जागृति प्रकाशन**
  श्री कृष्णानन्द सागर
  एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
  फोन : 0120-2538101 मो. : 09871143768

ISBN 978-93-84133-05-4

प्रथम संस्करण : 2014 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : पचास रुपये मात्र

आवरण : गौरीशंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

SRISHTI RAHASY, KARM KA SIDDHANT TATHA YAGY TATTV (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 50

सम्पादकीय

यह विराट, अनन्त सृष्टि क्या है? इसका स्वरूप क्या है? इसका तत्त्व क्या है? इसका कोई सृष्टा है या नहीं आदि प्रश्न विज्ञान एवं दर्शन के अनादि प्रश्न हैं। इस संदर्भ में प्राचीन एवं अर्वाचीन (आधुनिक) विज्ञान की क्या खोजें है? और आज किस प्रकार आधुनिक विज्ञान के निष्कर्ष भारतीय दर्शन विशेषकर अद्वैत विज्ञान के निष्कर्ष के निकट पहुँच गया है, इसका स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है।

मनुष्य की योनि ही एकमात्र भोग योनि के साथ-साथ कर्म योनि है। पशु और देव योनि भोग योनि है, जिसमें पाप-पुण्य का क्षय मात्र करते हैं, नये कर्म अर्जन की क्षमता इनमें नहीं है। मनुष्य योनि में भोग के साथ-साथ नये कर्म अर्जित करते हैं। मानव देह में ही यह क्षमता कर्म के स्वरूप को समझकर कर्मों के पार जा सकता है, प्रकृति के पार जाकर अपने वास्तविक आत्मस्वरूप को, पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। हम सब कर्म बंधन से मुक्त होकर अपने आत्म-ब्रह्म ऐक्य की स्थिति प्राप्त को प्राप्त कर सके इस दृष्टि से कर्म के सिद्धान्त कर्म के रहस्य का प्रतिपादन हुआ है।

भारतीय संस्कृति का एक पावनतम प्रतीक यज्ञ तत्त्व है। इसकी महिमा से सारा भारतीय वाङ्मय गूंज रहा है। यज्ञ अपने से बड़ी इकाई के प्रति लोक संग्रह के भाव से त्याग, समर्पण है। सारी सृष्टि यथा अपना शरीर जीवन, परिवार जीवन, समाज जीवन, राष्ट्र जीवन, विश्व जीवन का आधार यज्ञ ही है। यज्ञ एक वैज्ञानिक विधि है जिससे पर्यावरण शुद्ध होता है तथा वृष्टि होती है इसको स्पष्ट किया गया है। वैदिक आदर्श देवताओं के निमित्त होम-हवन से है पर वैदान्तिक आदर्श सारे जीवन को यज्ञमय बनाना है इसको स्पष्ट किया गया है।

इसमें दो लेख डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र के चतुर्थ खण्ड से और तीन पंचम खंड से संकलित है। परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद एवं सांखला प्रिंटर्स के सौहार्दपूर्ण प्रिंटिंग कार्य में सहयोग से प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

स्वामी संवित् सुबोधगिरि
सम्पादक एवं संकलनकर्ता
मो. 09413769139

अनुक्रम

सृष्टि-रहस्य

यह विराट्, अनन्त सृष्टि क्या है? इसका स्वरूप क्या है? इसका तत्त्व क्या है? इसका कोई सृष्टा है या नहीं आदि प्रश्न विज्ञान एवं दर्शन के अनादि प्रश्न हैं। जब तक जीव पशुओं के समान सिर झुकाये हुए चार पांव पर धरती पर चलता रहा तब तक उसने सृष्टि और सृष्टा के बारे में कोई जिज्ञासा नहीं की। किन्तु, मानव के रूप में जब वह दो पांवों पर खड़ा हो गया और उसने अपने ऊपर अनन्त आकाश और उसमें फैली हुई असंख्य ज्योतियों को देखा तो वह विस्मय से भर गया। यह अनन्तानन्त तारों से खचित विश्व क्या है? प्रसिद्ध दार्शनिक कांट पहले भूगोल एवं नक्षत्र विज्ञान का अध्यापक था। अनन्त आकाश के अनन्त ज्योति पिण्डों को देखकर उसे जो विस्मय हुआ उसी से वह दार्शनिक बन गया। अरिस्टोटल ने ठीक ही कहा है Philosophy is born in the lap of wonder. अर्थात् विस्मय की गोदी में दर्शन का जन्म होता है।

क्या यह सृष्टि महान् शक्ति की सर्जना है अथवा यह स्वयं ही प्रारम्भ से अपने आप है। इस प्रश्न पर भी वैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों में आज तक बड़ा ऊहापोह चलता रहा है। सृष्टि शब्द से यही प्रतीत होता है कि यह किसी सृष्टा द्वारा सृष्ट की गई है। आंग्ल भाषा में Creation शब्द भी किसी Creator की अपेक्षा रखता है। बिना Creator के Creation नहीं हो सकती। आंग्ल भाषा में Universe का शाब्दिक अर्थ भी यही है किसी एक शक्ति द्वारा समान नियमों में बंधा हुआ संतुलित काव्य। वेद में भी इसे देवता का काव्य कहा गया है—

पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।

अर्थात् उस देवता के काव्य को तो देखो न यह मरता है और न पुराना होता है।

Verse या काव्य का हार्द है उसमें लयबद्धता (Rhythm)। यदि काव्य से लय निकाल दी जाए तो काव्य, काव्य ही नहीं रहता। यदि सृष्टि से लय या नियमबद्धता निकाल दी जाए तो सृष्टि ही न रहे। इसे आंग्ल भाषा में Cosmos भी कहते हैं। जिसका अर्थ है एक व्यवस्थित संतुलित विश्व। बिना व्यवस्था अथवा

नियम के यह Cosmos Chaos हो जाएगा। अतः दार्शनिक Design designer का तर्क लगाकर सिद्ध करते हैं कि इस विराट् सृष्टि का सृष्टा अवश्य है।

विज्ञान सृष्टि को किसी सृष्टा की रचना न मानकर अपने आप प्रकृति का खेल मानता है। प्रश्न पैदा होता है कि क्या यह जड़ प्रकृति का खेल है? इससे कई गम्भीर प्रश्न खड़े हो जाते हैं जिनको रहस्य कहकर विज्ञान टाल देता है। यदि सृष्टि में व्यवस्था है तो उसमें कुछ नैतिक उद्देश्य सन्निहित है जो जड़ की परिधि के बाहर है।

प्रकृति शब्द भी बड़ा रहस्यमय है। यदि सृष्टि प्रकृति की लीला है तो इस लीला का प्रेरक एवं नियंता कौन है? यह बड़े गंभीर प्रश्न हैं। सांख्य दर्शन कहता है पुरुष की इच्छानुसार प्रकृति नटी (नर्तकी) नृत्य करती है। न्याय दर्शन में भी प्रकृति और पुरुष दोनों को अनादि सत्ताएं माना गया है। इनके अनुसार जड़ प्रकृति और चेतन पुरुष दोनों के मेल के बिना कोई सृष्टि नहीं हो सकती। वेदान्त दर्शन के मत में प्रकृति माया की ही सर्जन शक्ति का नाम है। ब्रह्म के संकल्प से ही ब्रह्म की शक्ति माया या प्रकृति के रूप में अनन्त ब्रह्माण्ड रच देती है। उसे रचने के लिए किसी बाह्य पदार्थ या साज सामान की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस दृष्टिकोण से ब्रह्म सृष्टि को पैदा नहीं करता वरन् अपने संकल्प से स्वयं सृष्ट रूप बन जाता है। जहां सामान्य जगत् में Transient नश्वर एवं भिन्न कार्य-कारणवाद का सिद्धान्त चलता है वहीं ऊंचे अध्यात्म की चर्चा में immanent causility अभिन्न-निमित्तोपादान कार्य-कारणवाद का सिद्धान्त चलता है। जैसे प्रकाश उष्णता को पैदा नहीं करता वरन् उष्णता बन जाता है। बर्फ पानी पैदा नहीं करता वरन् पानी ही बन जाता है। बिजली प्रकाश को पैदा नहीं करती वरन् प्रकाश बन जाती है। उसी प्रकार ब्रह्म सृष्टि को पैदा नहीं करता वरन् स्वयं सृष्टि रूप ही बन जाता है। इसलिए सृष्टि को ब्रह्माण्ड कहा गया है जिसका अर्थ है ब्रह्म का शरीर। सृष्टि ब्रह्म के विराट् रूप का दर्शन है। यही साकार ब्रह्म है—

हरिरेव जगत् जगदेव हरि

हरि ही जगत् है और जगत् ही हरि है।

इस सृष्टि का विस्तार कितना बड़ा है इस विषय में वैज्ञानिक अभी तक विस्मय विमुग्ध होकर कुछ भी निश्चित रूप से कहने योग्य नहीं हो सके हैं। अनन्त आकाश का ओर-छोर जान पाना मानव की शक्ति से परे है। यदि आकाश के तारों को धरती के सब समुद्रों के बालू कणों के समान माना जाए तो हमारी धरती एक बालू कण के दस लाखवें हिस्से के बराबर होगी और उसमें मानव धरती के साढ़े चार अरब मनुष्यों में से एक असंख्य पदम मील असंख्य जीवों में से एक धरती का कई अरब-खरब गुणा छोटा अंश ठहरता है। यदि यह छोटा-सा मानव

इस अनन्त सृष्टि को मापने का प्रयास करे तो वह ऐसा ही है जैसे एक नमक की पुतली सागर की थाह पाने का प्रयास करे—

गई पूतरी नौन की, थाह सिन्धु को लेन,
गल बल वह सिन्धु भई, कहे कौन अब बैन। कबीर

हमारी धरती सूर्य के ग्रहों में से एक है। सूर्य का व्यास धरती से 110 गुणा बड़ा है। सूर्य का भार धरती से 3 लाख 33 हजार गुणा अधिक है। सूर्य का भार अपने समस्त उपग्रहों के सम्मिलित भार से हजार गुणा अधिक है। सूर्य की पृथ्वी से दूरी नौ करोड़ 17 लाख मील है। सूर्य के प्रकाश को धरती तक पहुंचने में 8 मिनट 18 सेकंड लग जाते हैं। सूर्य की आयु लगभग 6 अरब वर्ष है। सूर्य का तापमान 16 करोड़ डिग्री सेन्टीग्रेड है। सूर्य से निकटस्थ आकाशगंगा के केन्द्र की दूरी तीस हजार प्रकाशवर्ष है। प्रकाश की गति एक सेकंड में एक लाख 86 हजार मील है। एक मिनट उससे 60 गुणा एक घण्टे में उससे 60 गुणा, एक दिन में उससे 24 गुणा और एक वर्ष में उससे 365 गुणा। इस प्रकार एक वर्ष में प्रकाश 94 खरब 63 अरब किलोमीटर की यात्रा करता है। सूर्य को आकाशगंगा के केन्द्र की एक परिक्रमा पूरी करने में 25 करोड़ वर्ष लग जाते हैं। एक आकाशगंगा में ढाई अरब से अधिक अनगिनत तारे हैं। कुछ तारों का आकार इतना बड़ा है कि वे हमारे सूर्य से भी हजारों गुणा बड़े हैं। कुछ तारे कई अरब प्रकाशवर्ष की दूरी पर हैं। उनका प्रकाश जब से सृष्टि बनी है तब से अभी तक धरती पर पहुंचा नहीं। ये तो एक आकाशगंगा की बात है। ऐसी अनन्त आकाशगंगाओं का विचार करते हुए मनुष्य की तुच्छ बुद्धि चकरा जाती है और अनन्त के सामने नतमस्तक हुए बिना उसके पास कोई चारा ही नहीं बचता।

जिस प्रकार सृष्टि के विस्तार की थाह पाना सम्भव न हो सका उसी प्रकार सृष्टि के आकार या रूप के विषय में भी वैज्ञानिकों एवं विचारकों में मतभेद हैं। क्या सृष्टि एक प्याले के समान खुली है या छत्र के समान उलटी है या गोल आवरण के समान चारों ओर लपेटी हुई है या घोड़े की पीठ की काठी के समान बीच में धंसी हुई है और दोनों तरफ तिरछी बाहर फैलती हुई है। ये सब भिन्न-भिन्न विचारकों की कल्पनाएं हैं। जो सृष्टि के आंशिक अध्ययन के फलस्वरूप पैदा होती है। किसी वस्तु का आकार निरूपण तभी सम्भव है जब हम आकार को बनाने वाली और बांधने वाली सीमारेखाओं की out line को जान सकें। वास्तविकता तो यह है कि सृष्टि के ओर-छोर या बाह्य रेखाओं को किसी भी साधन से आज तक जाना नहीं जा सका। इसलिए सृष्टि के आकार की कल्पना किसी तथ्य के आधार पर नहीं हो सकती। चन्द्रमा, धरती, सूर्य, सौरमण्डल, नवग्रह, महासूर्य एवं आकाशगंगाओं की नियमित गतियों से यही तर्कसम्मत

निष्कर्ष निकलता है कि सृष्टि एक विशाल गोलाकार अथवा अण्डाकार ब्रह्माण्ड के रूप में होगी।

सृष्टि के अध्ययन में वैज्ञानिकों ने जो खोज की है उन तथ्यों को जानकर तत्त्व विज्ञान अपना कुछ निर्णय दे सकता है। विज्ञान jury के समान है जो fact finding committee के समान तथ्य खोजते हैं। फिर दर्शन उन तथ्यों के आधार पर एक जज के समान अपना निर्णय बनाता है। यदि भिन्न-भिन्न विज्ञान jury के सदस्य हैं तो दर्शन एक जज के समान है। जो jury के ऊपर है किन्तु बिना jury की सहायता के निर्णय नहीं दे सकता। सृष्टि के अध्ययन में भी विज्ञानों की खोजें दर्शन के अध्येता के लिए भी बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

समस्त विज्ञानों के लिए आज तक जो सबसे बड़ा प्रश्न मुंहबाये खड़ा है वह यह है कि धरती पर जीवन कैसे प्रकट हुआ और इतनी विराट् सृष्टि में अभी तक केवल इसी धरती पर जीवन के प्रमाण मिलते हैं ऐसा क्यों? जब सृष्टि इतनी विराट् है तो जीवन उसके एक छोटे से कण पर सीमित है ऐसा क्यों है? फिर यह सृष्टि जितनी बननी थी बन चुकी या अभी भी विकासमान है। पुराने धार्मिक मत के अनुसार सृष्टि आज से लगभग दो अरब वर्ष पूर्व बनी। महाप्रलय में पुनः ब्रह्म में लय हो जाएगी। वेद में एक नासदीय सूक्त है जिसमें उस स्थिति का वर्णन है जब न सूर्य था, न चन्द्र, न आकाश, न तारागण, न दिन और रात कुछ भी न था, पर ब्रह्म था। खुली आंखों से विश्व को देखते हुए हम उस स्थिति की कल्पना नहीं कर सकते कि कोई ऐसा काल भी रहा होगा जब स्वयं काल भी नहीं था, देश भी नहीं। पात्र-परिस्थिति कुछ भी नहीं था। इसके विपरीत एक ध्यानयोगी अपनी निर्विकल्प समाधि में उस नासदीय सूक्त में वर्णित स्थिति का प्रत्यक्ष अपने भीतर दर्शन कर लेता है। निर्विकल्प समाधि में देश-काल, पात्र-परिस्थिति, सूर्य-चन्द्र, तारागण सहित समस्त सृष्टि शून्य में विलीन हो जाती है और शुद्ध आत्मज्योति या ब्रह्म ज्योति की अनुभूति होती है। अतः विज्ञान जिस स्थिति की कल्पना को भी असम्भव मानता है उसे अध्यात्मवादी प्रतिदिन प्रत्यक्ष देखता है। सृष्टि के पहले से रचित होने के विपरीत विज्ञान कहता है कि सृष्टि अभी भी विकसित हो रही है। आकाश में काले स्थान (ब्लैकहोल) शून्य के स्थान हैं जहां अनेक बड़े-बड़े तारे जाकर विलीन हो जाते हैं और वहां पदार्थ अपदार्थ बन जाता है। उस शून्य में से पुनः अनेक तारे, नक्षत्र पैदा हो जाते हैं। कई तारे टूटते हैं कई नये बनते रहते हैं। यह वैसे ही है जैसे धरती पर पुराने मानवों के मरण के साथ नये जीवों का जन्म होता रहता है। अध्यात्म भी इस तथ्य को स्वीकार करता है। जगत् का अर्थ ही है जो गतिमान है। संसार का अर्थ—

संसरति इति संसारः।

जो संसरण करता रहता है। बढ़ता रहता है, चलता है वही संसार है। चलने के दोनों अर्थ हैं, संसार से चले जाना और चलकर आगे बढ़ना। अतः सृष्टि चिर प्राचीन होते हुए भी नित्य नवीन है। इसलिए वेद ने कहा—

न ममार न जीर्यति।

(क.) अपनी लघुता का भय—सृष्टि की विराटता और उसकी लघुता को देखकर मानव केवल विस्मित नहीं होता वरन् भयभीत भी हो जाता है। कहां मानव से करोड़ों गुणा बड़ी धरती, कहां पृथ्वी से लाखों गुणा बड़ा सूर्य, कहां सूर्य से लाखों गुणा बड़ा महासूर्य, कहां अरबों महासूर्यों के पुंजवाली आकाशगंगा और अनन्त आकाशगंगाएं हैं और इस अनन्तानन्त विश्व के बीच में छोटा-सा मानव।

(ख.) दूरी का भय—इस विराट् आकाश में यदि दो तारों को समुद्र में चलने वाला जहाज माना जाए तब दो तारों की औसतन दूरी लगभग दस लाख मील होगी। मानव को इस दूरी का भय है।

अति उष्णता में जीवन असम्भव—सूर्य एवं सब तारे इतने भीषण गर्म हैं कि उनमें कठोर से कठोर वस्तु पिघल जाएगी और जल जाएगी।

जीवन के योग्य क्षेत्र बहुत ही कम है—उनके बाहर के खाली आकाश का तापमान absolute zero (पूर्ण शून्य) 484 डिग्री फॉरेनहाइट से भी कहीं अधिक नीचे है, जहां गर्मी और शीत का मिलन होता है। उसी थोड़ी-सी परिधि में ही जीवन सम्भव है। संयोगवशात सूर्य से लगभग 9 करोड़ मील की दूरी पर हमारी धरती सूर्य की परिक्रमा कर रही है, जहां सूर्य का ताप घटते-घटते इस सीमा तक पहुंच गया कि जीवन सम्भव हो सका।

अन्य ग्रहों पर जीवन का पता नहीं—किन्तु सूर्य के ही अन्य ग्रहों में जीवन का आज तक कोई पक्का प्रमाण नहीं मिला है।

फिर लाखों तारों में से कोई एक ही होता है जिसके सूर्य के समान उपग्रह हों। इस सृष्टि में जीवन जीने योग्य तापमान की पट्टियां जमा की जाए जहां जीवन सम्भव है तो ऐसा क्षेत्र पूरे विश्व का 1/10,00000 (1 बटा दस लाख वर्ग) अंश होगा। अर्थात् जीवन योग्य क्षेत्र बहुत ही कम है। अतः जीवन और चेतना का जो प्रकाश हमारी धरती पर है वैसा आज तक अन्यत्र कहीं अभी तक प्रमाणित नहीं हो सका।

एक जीवित शरीर के रासायनिक विश्लेषण से पता लगता है कि उसमें निम्नलिखित रसायन परमाणु हैं—कार्बन (जैसे कोयला में), हाइड्रोजन और ऑक्सीजन (जैसे पानी में), नाइट्रोजन जैसे हवा में। इन परमाणुओं के मेल से जीवित पदार्थों के Molecule (बड़े अणु) बनते हैं। किन्तु केवल इन्हीं के मेल

से जीवन प्रकट हो गया होगा यह तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। क्योंकि जीवन का चैतन्य गुण इनके मिश्रण से प्रकट नहीं होता। रसायन शास्त्र हमें जीवन का रहस्य वैसे ही खोलकर नहीं बता सकता जैसे चुम्बकीय शक्ति और रेडियो Activity की व्याख्या नहीं कर सकता।

जब हम भविष्य की ओर देखते हैं तो दूर भविष्य में उस स्थिति का विचार कर निराश हो जाते हैं जब धीरे-धीरे यह सूर्य अपने प्रकाश को देते-देते ठण्डा हो जाएगा और धरती जो धीरे-धीरे सूर्य से कुछ दूर होती जा रही है, ठण्डी हो जाएगी और इस पर जीवन है जो अब तक के ज्ञात विश्व में केवल इसी धरती पर ही है अन्यत्र नहीं। वह भी एक भीषण हिम प्रलय में समाप्त हो जाएगा। नक्षत्र विज्ञान और भौतिकी दोनों का यही भविष्य कथन है।

क्या ब्रह्माण्ड का उद्‌भव हुआ? इस विषय में बड़ी रोचक गवेषणा चल रही है। सन् 1826 में वियना के डॉक्टर ओल्बर्स ने एक प्रश्न उठाया कि जब आकाश में इतनी अधिक ज्योतियां हैं तब रात्रि में हमें आकाश में अंधेरा क्यों दिखता है। इसके उत्तर में यह कहा गया कि चूंकि तारे असीमित दूरी तक फैले हुए हैं। इसलिए उनका प्रकाश सम्मिलित रूप से सूर्य के प्रकाश से भी बढ़कर होना चाहिए चाहे दिन हो या रात। अमरीकी खगोलशास्त्री एड्‌विन हबल ने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि आकाशगंगाएं निरन्तर दूर छितराती जा रही हैं। अर्थात् ब्रह्माण्ड फैल रहा है। हमारे निकट की आकाशगंगा जिसमें हमारा सूर्य भी सम्मिलित है, उसमें लगभग एक खरब तारे हैं। इसकी दूरी हमसे 20 लाख प्रकाशवर्ष है। अर्थात उनका प्रकाश हम तक पहुंचने में 20 लाख प्रकाशवर्ष लग जाते हैं। बीच में अनन्त शून्य आकाश अंधकार से भरा है इसलिए आकाश में अंधेरा दिखता है। फ्रीडमान के मत में ब्रह्माण्ड की सृष्टि एक भीमकाय विस्फोट से हुई और धीरे-धीरे इसका फैलाव जारी है। उसके मत में यह विस्फोट 10-15 अरब वर्ष पूर्व हुआ। यह उनकी कल्पना मात्र है, जो गणित या अन्य किसी विज्ञान से अभी तक सिद्ध नहीं हो सकी। यदि ब्रह्माण्ड में विस्फोट हुआ तो इसमें नियमबद्धता, कालबद्धता और लयबद्धता नहीं रह सकती।

तीन अंग्रेज वैज्ञानिक हरमोन बोंडी, टोमस गोल्ड और फ्रेड हायल ने एक दूसरा सिद्धान्त दिया कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई ही नहीं। यह अनादि और अनन्त है। प्रो. नारलीकर ने टाटा अनुसंधान केन्द्र मुम्बई में कहा कि महाविस्फोट का सिद्धान्त अभी तक स्वीकार करने योग्य नहीं है। इस विषय में और बहुत अधिक खोज की अपेक्षा है।

भौतिक विज्ञान भूत एवं ऊर्जा का विज्ञान है। इस विज्ञान ने भी सृष्टि एवं जीवन की व्याख्या का अच्छा प्रयास किया है। 17वीं शताब्दी में गैलिलियो तथा

न्यूटन जैसे वैज्ञानिकों ने एक नया युग आरम्भ किया। गैलिलियो ने प्रथम बार रोम में एक विशाल दूरवीक्षणयंत्र द्वारा यह सिद्ध करने का सफल प्रयास किया कि इस ब्रह्माण्ड में बड़े ग्रहपिण्ड केन्द्र में रहते हैं और छोटे उपग्रह उनकी परिक्रमा करते हैं। उसने यह भी कहा कि हमारी धरती गोल है तथा यह सूर्य की परिक्रमा करती है। रोम के पोप तथा पादरी बाइबिल के अंध-विश्वास के अनुसार यह मानते थे कि धरती चपटी है और यह घूमती या परिक्रमा नहीं करती। उन्होंने गैलिलियो को अपराधी घोषित करके कारागार में डाल दिया। गैलिलियो ने पादरियों से दूरबीन से प्रत्यक्ष दिखाने के लिए अवसर मांगा और एक ऊंची मीनार पर दूरबीन लगाकर स्पष्ट कर दिया कि शनिग्रह (मुख्यपिण्ड) बीच में है और उसके उपग्रह उसके इर्द-गिर्द तेज गति से घूम रहे हैं। अभी तक आकाश में शनिग्रह देखने से एक सुदर्शन चक्र जैसा चक्र दिखाई देता है, जिसमें बाहर उपग्रह के तेजी से घूमने के कारण एक प्रकाश का वृत्त बन जाता है। किन्तु पादरियों ने अन्ध-विश्वास के कारण इसे भी सत्य नहीं माना और गैलिलियो को जादूगर कहकर कहा कि ग्रहों के घूमने के स्थान पर गैलिलियो का यंत्र ही घूमता होगा। इस प्रकार गैलिलियो को इस महान् वैज्ञानिक आविष्कार के पुरस्कार स्वरूप कारागार में सता-सता कर मारा गया। एक-दूसरे वैज्ञानिक कोपरनिकस ने भी गैलिलियो के समान धरती की गोलाई एवं परिक्रमा का निष्कर्ष निकाला था पर गैलिलियो की दुर्गति को देखकर अपने सिद्धान्त और पुस्तक को जीवनभर प्रकाशित नहीं किया। इसकी तुलना में भारत में भूगोल (भूमि गोल), भू-परिक्रमा एवं खगोल, ब्रह्माण्ड आदि शब्द विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ वेद में ही पाये जाते हैं। 17वीं शताब्दी में ही इंग्लैंड के वैज्ञानिक सर इस्साक न्यूटन ने अचानक एक वृक्ष के फल को नीचे गिरता देखकर विस्मय से विचार करना शुरू किया कि फल ऊपर से नीचे क्यों गिरता है? उसने कई प्रयोग करने के बाद एक कल्पित सिद्धान्त दिया कि सम्भवतः प्रत्येक वस्तु धरती के केन्द्र की ओर खींची जाती है। इसे hypothesis gravitation गुरुत्वाकर्षण का कल्प नियम कहा गया है। न्यूटन के लगभग 100 वर्ष बाद Theory of gravitation कहा गया। उसके पुनः 100 वर्ष बाद इसे Law of gravitation माना गया। 20वीं शताब्दी के प्रथम चरण में इसकी तुलना में भारत के महान् गणितज्ञ भास्कराचार्य ने प्रथम शताब्दी में ही इस गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की घोषणा कर दी थी—

आकृष्टि शक्तिश्च मही तया यत् स्वस्थं
गुरु स्वामिमुखं स्वशक्त्या
आकृष्यते तत्पततीव भाति
समेसमन्तात् क्व पतत्वियं खे।।6।।

धरती की आकर्षण शक्ति है। उसी के द्वारा आकाश में हर वस्तु को अपनी भार की शक्ति से धरती अपने केन्द्र की ओर खींचती है। वह वास्तव में आकर्षित की जाती है पर प्रतीत होती है कि वह गिर रही है। जब चारों ओर आकाश समान रूप से फैला हुआ है और धरती गोल है तब आकाश में किसी वस्तु का गिरना हो ही कैसे सकता है।

भारत में जो व्यक्ति दो पांव पर खड़ा है उसकी तुलना दक्षिण गोलार्द्ध (आस्ट्रेलिया) में उलटा खड़ा दिखाई देता है पर दोनों उछलकर धरती पर ही आते हैं। दोनों अपने को सीधा मानते हैं। उसी प्रकार पूर्व-पश्चिम में लोग अपने को सीधा ही मानते हैं और लौटकर धरती की ओर ही आते हैं।

न्यूटन ने गति के तीन सिद्धान्त प्रतिपादित किये—

(क) Law of Inertia—प्रत्येक वस्तु अपनी स्थिरता में या गति में तब तक जारी रहती है जब तक कोई अन्य शक्ति उसकी गति या स्थिरता में बाधा न डाले।

(ख) Law of Force—किसी वस्तु के वेग परिवर्तन की दर उस पर लगाये गये बाह्य बल की मात्रा एवं दिशा के अनुपात में होगी (गाड़ी पर जितना बल जिस दिशा से लगेगा उसके अनुपात में गाड़ी की गति होगी)।

(ग) Law of Action Reaction—प्रत्येक क्रिया की उसके बराबर प्रतिक्रिया होती है। जब हम आगे चलते हैं वस्तुतः हम धरती को पांव से पीछे धकेलते हैं। इसी से हम आगे बढ़ते जाते हैं। नौका चलाने में चप्पू से पानी को पीछे धकेला जाता है, नौका आगे बढ़ जाती है।

न्यूटन को आधुनिक विज्ञान का जनक माना जाता है। पश्चिम में यूनान में ईसा से लगभग 3 शती पूर्व अर्शमेदस (Arcnimedes) नामक वैज्ञानिक हुआ था। जिसने एक राजा के ताज में लगे हुए सोने की शुद्धता की जांच के लिए अर्शमेदस का सिद्धान्त खोजा था। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु को जल में डालने पर वह उतना ही पानी ऊपर उठा देती है जितना की उस वस्तु का परिमाण Volume हो। इसे उस वस्तु की Specific gravity विशिष्ट भार कहा जाता है।

अर्शमेदस के काल से न्यूटन के काल तक लगभग दो हजार वर्षों तक पश्चिम में विज्ञान मृत हो गया था। क्योंकि ईसाइयत अंधविश्वास के कारण Bruno (ब्रूनो) को चौराहे पर जीवित जलाया गया। Zeno (जीनो) नामक दार्शनिक को घर समेत फूंक डाला गया। गैलिलियो को सता-सता कर मारा गया। कोपरनिकस को आतंकित किया गया। इस प्रकार ईसाइयत के अंधविश्वास ने पश्चिम में विज्ञान का गला घोंट रखा था। एक लम्बी कालावधि के बाद न्यूटन ने

गुरुत्वाकर्षण एवं गति का सिद्धान्त दिया। इसलिए उसे आधुनिक विज्ञान का जनक माना जाता है। जिस काल में पश्चिम में विज्ञान मृतप्राय था उस काल में भारत में बहुत उच्चकोटि की वैज्ञानिक प्रगति जारी थी। यहां भास्कराचार्य, वराहमिहिर, आर्यभट्ट, श्रीधर, लीलावती आदि अनेक वैज्ञानिक हुए।

न्यूटन के पश्चात् Helmhotz हेल्महोट्ज, लार्ड केल्विन ने प्रकृति को एक बड़े यंत्र के रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की। प्रकृति एवं सृष्टि की यांत्रिक व्याख्या से ठोस, द्रव और गैस आदि को भी यांत्रिक गुण वाला बताया गया। जब सारी सृष्टि एक विशाल यंत्र के समान है जो कार्य-कारण सिद्धान्त में बंधी हुई है, तब जीवन भी इसी सृष्टि रूपी मशीन की उपज है।

इस विचार के विपरीत दार्शनिक विचार यह है कि यांत्रिक सृष्टि में जहां हर वस्तु यंत्र के अनुसार विवश बंधी हुई चल रही है वहां मानव के स्वतंत्र संकल्प के लिए कोई स्थान ही नहीं बचता। अत: मानव भी सृष्टि रूपी मशीन का एक असहाय कलपुर्जा बन जाता है। जबकि सृष्टि में जड़ की अपेक्षा चेतन अधिक महत्त्वपूर्ण है। जो जड़ को रचता है, तोड़ता है, फोड़ता है, परिवर्तन करता है और उसकी व्याख्या करता है। दार्शनिकों ने यांत्रिकों से पूछा कि क्या यंत्र न्यूटन के विचार पैदा कर सकता है। इस प्रकार यांत्रिक व्याख्या अपर्याप्त सिद्ध हुई। इसमें मनुष्य के स्वतंत्र संकल्प के लिए स्थान नहीं है। और जड़ तो विचार कर ही नहीं सकता।

न्यूटन के मत में सारे विश्व में एक तत्त्व व्याप्त है जिसे ईथर कहते हैं। इस ईथर में कण हैं जो गति के नियमों के अनुसार चलते हैं। न्यूटन की इस मान्यता को आधुनिक भौतिक विज्ञान ने अस्वीकार कर दिया है। आधुनिक भौतिकी ने खोजा कि कण अत्यन्त सूक्ष्म है जिनकी गति बहुत तेज और चक्राकार है। 1895 में रोण्ट जेन ने X-Ray किरणों के आविष्कार से सिद्ध किया कि पदार्थ से निकलने वाली किरणें इतनी सूक्ष्म होती हैं कि वे मानव शरीर एवं लौह आदि चद्दर को भी भेदकर निकल सकती हैं। बेक्रेल ने खोज की कि यूरेनियम से तीन प्रकार की किरणें निकलती रहती हैं। अल्फा किरणें, बीटा किरणें और गामा किरणें X-Ray से भी अधिक भेदन करने वाली है। थोड़ी देर तक त्वचा पर पड़ने से गहरे घाव हो जाते हैं। आजकल कैंसर का इलाज इन्हीं गामा किरणों के द्वारा होता है। इसे रेडियम Theory कहा जाता है। मैडम क्यूरी (Kuri) ने रेडियम की खोज से सिद्ध किया कि रेडियम नामक धातु से अपने आप विकिरण होता रहता है। जिससे रेडियम अपने आप शीशा में परिवर्तित हो जाता है। रेडियम अथवा यूरेनियम से निकलने वाली गामा किरणें प्रकाश की गति (एक सेकंड में एक लाख 86 हजार मील की गति) से चलती है। रेडियम से निकलने वाला विकिरण यूरेनियम की अपेक्षा चार

गुणा अधिक है। सन् 1911 में श्रीमती क्यूरी को रेडियम की खोज के लिए नोबल पुरस्कार मिला।

न्यूटन की आलोचना

न्यूटन का विचार था कि प्रकाश छोटे-छोटे कणों के रूप में है जो ईथर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक, सीधी रेखा में बंदूक की गोली के समान, गति के सिद्धान्त के अनुसार चलते हैं—

(क) बाद में वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया कि प्रकाश कण-रूप में नहीं वरन् तरंग-रूप में चलता है। इसकी तरंगें समुद्र की तरंगों के समान सीधी, आडी-तिरछी, घुमावदार, छोटी लहर-बड़ी लहर कई प्रकार की हो सकती है।

(ख) यदि प्रकाश केवल सीधी रेखा में चलता होता तो वास्तविक सूर्योदय से एक-दो घण्टा पूर्व में जो प्रकाश होता है वह असम्भव हो जाता। नहीं होता। वास्तव में प्रकाश की किरणें धरती की गोलाई के गिर्द घूमकर सूर्योदय से पहले भी कुछ प्रकाश कर देती हैं।

(ग) प्रत्येक वस्तु की धूप के सामने आने पर छाया पड़ती है। पर उसी वस्तु के दूर होते जाने से छाया धुंधली होती जाती है। क्योंकि उस वस्तु की छाया पड़ने के स्थान पर प्रकाश दायें-बायें से होकर पहुंच गया। एक पतले धागे को धूप के सामने दीवार के पास रखने से उसकी छाया दिखलाई देती है। किन्तु उसी धागे को दीवार से दो गज पर ले जाने पर धागे की छाया लुप्त हो जाती है। क्योंकि प्रकाश की किरणें धागे के दायें-बायें से घूमकर आगे पुनः मिल जाती है।

(घ) यदि एक कमरे में छिद्र हो तो प्रकाश की रेखा सीधी आती दिखलाई देती है। किन्तु यदि छिद्र पिन होल, यानी सूई की नोक के बराबर का हो तो पिन होल में कैमरा के समान बाहर की वस्तुओं के चित्र दिखलाई देंगे जो कमरे के छिद्र से बहुत बड़े आकार के होंगे। इसका अर्थ है कि बाहर की वस्तुओं से चला हुआ प्रकाश छिद्र में आकर संकुचित हो गया और छिद्र के बाहर पुनः फैल गया। वैसे ही जैसे सिनेमा हॉल के बाहर खड़ी भीड़ एक छोटे दरवाजे से कठिनाई से भीतर प्रवेश करके अन्दर फिर फैल जाती है या दूध की बोतल का दूध रबर की निपल के छिद्र से निरन्तर निकल कर बच्चे के मुख में पुनः फैल जाता है। अथवा पिचकारी के छिद्र से रंग छूटकर पुनः फैल जाता है।

(ङ) यदि पिन होल रूपी कैमरा के छिद्र को प्रकाश की ओर किया जाए तो उस बारीक छिद्र से आने वाला प्रकाश एक चक्र के रूप में दिखलाई देगा जिसके चारों ओर एक हलका सा छाया चक्र होगा। फिर पुनः प्रकाश पर चक्र, फिर पुनः प्रकाश पर चक्र आदि। इससे भी न्यूटन की इस मान्यता का खण्डन होता है कि

प्रकाश केवल सीधी रेखा में चलता है। और जितना छिद्र मिले उतने ही आकार का प्रकाश का कण उसमें से पार होगा।

(च) न्यूटन ने कहा कि प्रकाश की किरण शीशे या ठोस चमकदार धरातल पर टकराने से समकोण (90 डिग्री) पर मुड़ जाती है। इसी के द्वारा उसने प्रकाश के सूर्योदय से पहले दिखलाई देने की व्याख्या की। यह Reflection of Light (प्रकाश का प्रतिबिम्ब) का सिद्धान्त ठीक है किन्तु शून्य आकाश में कोई दर्पण नहीं है जिससे प्रतिबिम्बित होकर सूर्य का प्रकाश सूर्योदय से पहले दिखलाई दे।

(छ) न्यूटन की ईथर की कल्पना भी मात्र कल्पना ही है। क्योंकि ईथर ना कोई वस्तु है ना पदार्थ। ना ऐसी वस्तु जिस पर प्रयोगशाला में कोई प्रयोग किया जा सके। यह तो खाली आकाश का नाममात्र है। अतः न्यूटन की कल्पना कि ईथर के माध्यम से पुनः प्रकाश के कण चलते हैं यह आज के विज्ञान को मान्य नहीं है।

(ज) न्यूटन की धारणा कि हर वस्तु, प्रकाश भी गति के नियमों के अनुसार चलता है। न्यूटन का दूसरा सिद्धान्त है कि किसी वस्तु की गति का वेग उसे चलाने वाली शक्ति और दिशा पर निर्भर करता है। किन्तु प्रकाश की किरण जो एक लाख 86 हजार मील प्रति सेकंड की गति से चल रही है उसे बाहर की कौन सी शक्ति चला रही है और किस दिशा से शक्ति आ रही है। प्रकाश तो किसी दिशा का अनुशासन न मानते हुए सब दिशाओं में फैलने का प्रयास करता है। न्यूटन उत्तर दे कि क्या प्रकाश स्वतः चालित है या परतः चालित।

(झ) न्यूटन का गति का तीसरा सिद्धान्त है कि प्रत्येक क्रिया की समान प्रतिक्रिया होती है। जब प्रकाश एक लाख 86 हजार मील प्रति सेकंड की गति से एक दिशा में दौड़ता है तो क्या उतनी ही गति से विपरीत दिशा में भी उसका प्रकाश जाता है। यदि Search Light की रोशनी पूर्व दिशा की ओर फेंकी जाए तो क्या पश्चिम की दिशा में भी मीलों तक प्रकाश होगा?

(ञ) न्यूटन को 17वीं शती में गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त सूझा और इस खोज के लिए पश्चिम ने न्यूटन को विज्ञान का जनक होने का सम्मान दिया। किन्तु न्यूटन से 16 शती पूर्व भारत के भास्कराचार्य ने जिस गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की स्पष्ट चर्चा की थी, क्या उनके सम्मुख इस सिद्धान्त की खोज का यश न्यूटन को मिल सकता है? विज्ञान के इतिहास की दृष्टि से गुरुत्वाकर्षण की खोज का श्रेय भारत को ही मिल सकता है। किसी पाश्चात्य वैज्ञानिक को नहीं।

(ट) न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को पूर्ण अकाट्य एवं विश्वव्यापी बताने की चेष्टा की। किन्तु आइंस्टीन ने सिद्ध किया कि गुरुत्वाकर्षण का

सिद्धान्त सापेक्ष है, पूर्ण नहीं है। धरती का गुरुत्वाकर्षण हर वस्तु को 32 फुट प्रति सेकंड की गति से अपनी ओर खींचता है। हम धरती के केन्द्र से चार हजार मील की ऊंचाई पर हैं (हम धरती के तल से ऊपर हैं)। यदि हम पृथ्वी के तल से चार हजार मील और आकाश की ओर चले जाएं तो गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कम हो जाने से हमारे शरीर का भार भी चार गुणा कम हो जायेगा। चन्द्रमा की ओर जाते हुए एक स्थिति आती है जहां धरती की आकर्षण शक्ति समाप्त हो जाती है और उसके बाद चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति प्रारम्भ होती है। जहां धरती और चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्तियां परस्पर एक-दूसरे को परस्पर संतुलित करती हैं वहां न धरती अपनी ओर खींचती है और न चन्द्रमा अपनी ओर। चन्द्र यात्री वहां पहुंचकर रॉकेट से बाहर निकल तैरने लगते हैं। चन्द्रमा पर पहुंच कर भी चन्द्र यात्री यह अनुभव करते हैं कि उनका भार नगण्य हो गया है। वे धरती की अपेक्षा बहुत अधिक ऊंची छलांग लगा सकते हैं। इसी प्रकार सब ग्रहों एवं सूर्य आदि की आकर्षण शक्तियां भिन्न-भिन्न है। इसलिए न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त मात्र धरती के धरातल पर ही लागू होता है। वह सापेक्ष है, पूर्ण नहीं है।

रदरफोर्ड—रदरफोर्ड से पहले डॉल्टन का Atomic theory का कथन कि Atom या परमाणु अविभाज्य है। रदरफोर्ड ने परमाणु को तोड़ने में सफलता पाई। सौरमण्डल के समान परमाणु के केन्द्र में प्रोटोन तथा बाहर की परिधि में इलेक्ट्रॉन बहुत तीव्र गति से घूम रहे हैं। परमाणु के केन्द्रक (न्यूक्लिअस) को शक्तिशाली केन्द्रक ऊर्जा द्वारा तोड़ा जा सकता है। परमाणु के केन्द्रक से विकिरण निकलते समय उसमें अत्यन्त प्रबल शक्ति प्रकट होती है। इसे Radio Active Energy कहते हैं।

Cosmic Rays

इस शताब्दी के प्रारम्भ में मेकलेनून तथा रदरफोर्ड आदि ने सृष्टि में Cosmic Ray की खोज की। जो प्रति सेकंड में हमारे वायुमण्डल के प्रत्येक घन इंच स्थान पर 20 परमाणु को तोड़ रही है और हम सबके शरीर में प्रति सेकंड में लाखों परमाणुओं को तोड़ रही है। यदि ये किरणें जो आकाश से आ रही हैं अधिक मात्रा में आने लगे तो बहुत बड़ा विनाश कर सकती हैं। सम्भवतः इन्हीं किरणों के कारण रेडियम और यूरेनियम में विकिरण होता है। ऐसा सोचा गया। किन्तु यह प्रमाणित नहीं हो सका। क्योंकि एक कोयले की खदान के भीतर चारों ओर से बाहर के आकाश से ढककर रखने पर भी रेडियम से विकिरण जारी रहा।

Maxplanck's Quantum Theory—मैक्सप्लांक की Quantum Theory सन् 1900 में प्रकाश में आई। मैक्सप्लांक ने यह सिद्धान्त रखा कि

भौतिक पदार्थों से विकिरण लगातार नहीं होता रहता, पर वह छोटे-छोटे ऊर्जा के पुंजों के रूप में कुछ-कुछ काल बाद होता रहता है। इसे वह ऊर्जा पैक्ट कहते हैं। क्योंकि यह ऊर्जा एक मात्रा में निकलती है इसलिए इस सिद्धान्त को Energy की Quantity के कारण Quantum Theory कहा गया। इस Theory से भौतिक विज्ञान में भारी क्रान्ति हुई। इसकी विशेष मान्यता यह है कि भौतिक तत्त्व भिन्न-भिन्न सत्ताओं से बनता है। सारी भौतिक सत्ताएं मूल रूप से ऊर्जा (Quantum) द्वारा बनी हुई है। जिसके यथार्थ वेग व स्थिति को एक ही समय पर नहीं जाना जा सकता। अत: ऊर्जा (Quantum) की भविष्य में होने वाली अवस्थाओं के विषय में कुछ भी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

Neils Bohr 'इलेक्ट्रॉन की कंगारू छलांग'—डेनमार्क के नील्स बोर ने रदरफोर्ड के विचार पर आगे कार्य किया। इलेक्ट्रॉन परमाणु के केन्द्रक के चारों ओर कई कक्षाओं में चक्कर लगा सकता है। वह एक कक्षा से दूसरी कक्षा में कूदकर जा सकता है। उसकी यह कूद बन्दूक की गोली की तरह तेज है। बोर के मत में इलेक्ट्रॉन जिस समय बाहर की कक्षा से अन्दर की ओर कूदता है उस समय वह Quantum ऊर्जा विकिरण करता है। जब वह बाहर से ऊर्जा प्राप्त करता है तब भीतर की कक्षा से बाहर की ओर जाता है। उसकी बाहर से भीतर ओर भीतर से बाहर की छलांग को कंगारू छलांग कहा गया है (आस्ट्रेलिया का कंगारू नामक जानवर मनमानी छलांगें लगाता है।)

अनिश्चितता—किसी भी समय पूर्वकथन करना असम्भव है कि Atomic तंत्र की अनेक ऊर्जाओं में से कौन-सी छलांग लगेगी। बोर भी Quantum Theory की अनिश्चितता का समर्थन करता है।

प्रो. हाइजनबर्ग

Inderminacy Due to Loose Jointedness of the Machinery of Universe.

प्रो. हाइजनबर्ग ने कहा कि Quantum Theory अनिश्चितता पर बल देती है। उसने कहा कि सृष्टि की मशीन सम्भवत: पुरानी होने से इसके जोड़ ढीले हो गए हैं। इसलिए Science का Law of causation यहां पूर्ण रूप से लागू नहीं होता और निश्चित कार्य-कारण के आधार पर निश्चित भविष्य कथन नहीं किया जा सकता। इसके उत्तर में सर जेम्स जीन्स तथा अन्य वैज्ञानिकों का कथन है कि सृष्टि के जोड़ ढीले नहीं हो गये वरन् अभी तक मनुष्य की बुद्धि और उसके आविष्कृत यंत्र ही ढीले हैं। विश्व में प्रत्येक वस्तु जड़ प्रकृति के कार्य-कारण से बंधी हो यह अनिवार्य भी नहीं है। हाइजनबर्ग के मत पर टिप्पणी करते हुए

एडिंगटन का कथन है कि प्रकृति के विषय में मानव को सापेक्ष एवं अपूर्ण ज्ञान ही हो सकता है, पूर्ण ज्ञान नहीं।

Light waves theory

(क) Newton corpuscle theory—न्यूटन ने प्रकाश को सीधी रेखा में चलने वाले सूक्ष्म कणों की धारा माना था। जैसे द्वार के छेद से आने वाली धूप की रेखा में धूप के छोटे-छोटे कण चमकते हुए दिखाई देते हैं। न्यूटन इन्हें light corpuscle या प्रकाश के कण कहता है।

(ख) हायगेन्स Light wave theory—डच वैज्ञानिक हायगेन्स के मत के अनुसार प्रकाशोत्पादक कणों के कम्पन से विशेष प्रकार की तरंगें उठती हैं। उसने कहा कि प्रकाश सीधी रेखा में कणों में नहीं चलता वरन् Light waves प्रकाश तरंगों के रूप में चलता है जो ठोस वस्तुओं के अणुओं के भीतर से भी होकर निकल जाता है।

(ग) प्रो. क्लार्क मैक्सवेल Light waves are Electromagnetic—सन् 1873 में प्रो. क्लार्क मैक्सवेल ने प्रमाणित किया कि प्रकाश विद्युत् तथा चुम्बकीय क्षेत्रों के कम्पन से उत्पन्न तरंग है। दूसरे शब्दों में Light is Radio Active Energy.

लुई डी ब्रोगली ने सिद्ध किया कि केवल इलेक्ट्रॉन एवं प्रकाश ऊर्जा का एक पहलू ही लहरदार नहीं है वरन् प्रत्येक भौतिक पदार्थ मूल रूप से तरंगों से ही बना हुआ है। उसके अनुसार भौतिक पदार्थ और प्रकाश दोनों तत्त्वत: एक ही हैं। भौतिक पदार्थ कण रूप है और प्रकाश लहर रूप है। इस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म, वस्तु और ऊर्जा दोनों एक ही तत्त्व के दो रूप हैं। आइंस्टीन के मत से भी इसकी पुष्टि हुई है। आइंस्टीन के अनुसार पदार्थ को ऊर्जा में और ऊर्जा को पदार्थ में परिवर्तित किया जा सकता है—

$E = MC^2$

E = ऊर्जा है, M संहति, C प्रकाश का वेग है।

ऊर्जा = वस्तु की संहति (Mass) × प्रकाश की गति (1,86,000 मील प्रति सेकंड)

ऊर्जा = वस्तु का वजन ×1,86,000 मी. × 1,86,000 मील प्रति सेकंड

(घ) Spectrum theory of Light—प्रकाश की Wave Theory के विरोध में Spectrum Theory प्रस्तुत की गई है। spectrum का अर्थ है सूर्य के सात इन्द्रधनुषी रंगों की पट्टिका। यदि सूर्य की रश्मि के सम्मुख एक तिपहला शीशा (प्रिज्म) रखा जाए तो सूर्य की श्वेत किरण अपने आप सात रंगों में विभाजित हो जाती है। जिसमें सबसे ऊपर लाल रंग होता है और सबसे

नीचे बैगनी रंग। इन रंगों का क्रम नीचे से ऊपर इस प्रकार होता है—बैगनी, नील, नीला, हरा, पीला, नारंगी, लाल। इसे spectrum या इन्द्रधनुष कहते हैं। आकाश में वर्षा के तुरत बाद जो इन्द्रधनुष बन जाता है। उसका भी कारण यही है। जैसे वायु और कांच दो भिन्न माध्यमों के भीतर से गुजरने पर सूर्य की रश्मि अपने आप मुड़ जाती है और तिपहले शीशे (प्रिज्म) के कारण सात रंगों में विभाजित हो जाती है। उसी प्रकार आकाश में सूक्ष्म जलकणों के कारण प्रकाश की रेखा दो माध्यमों से गुजरने पर तिरछी हो जाती है। (Refract हो जाती है) तथा सूक्ष्म जलकणों के तिपहले शीशे के समान पारदर्शी होने से सूर्य की किरण सात रंगों में विभाजित भी हो जाती है। इसी से आकाश में spectrum या इन्द्रधनुष दिखाई देता है। मनुष्य की आंख को केवल सात रंग दिखाई देते हैं। इसमें बैगनी की wave length सबसे छोटी है और लाल की wave length सबसे अधिक। लाल से अधिक एक और रंग Infrared जो बहुत अधिक गर्मी देने वाला है पर मनुष्य की आंख उसे देख नहीं सकती। उसे मनुष्य की हड्डियों के एवं जोड़ों के दर्द को सेंक द्वारा उपचार करने के लिए औषधालयों में प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार बैगनी रंग से नीचे एक और रंग है जिसे Ultra Violet रंग कहते हैं। यह भी मनुष्य को दिखाई नहीं देता। किन्तु सूर्योदय से पहले सूर्य की अदृश्य रश्मि तरंगों में पराकाशनी Ultra Violet रंग होता है जो मानव के स्वास्थ्य के लिए बड़ा गुणकारी है। अब Light Wave Theory के विरुद्ध Spectrum Theory की यह आपत्ति कि यदि प्रकाश लहरों में चलता हो तो तिपहले शीशे से पार होने के पश्चात् प्रकाश को नीचे के बैगनी रंग की ओर ही केन्द्रित होना चाहिए। उसे ऊपर की ओर लाल रंग की दिशा में फैलना नहीं चाहिए। लहर सदा ऊपर से नीचे गिरती है। वह फव्वारे की तरह आगे फैलती नहीं जाती।

इस तरह Spectrum Theory से Wave Theory की त्रुटि प्रकट होती है। Spectrum Theory फ्रान होफर ने खोज की। उसके बाद बुनसन किरसॉफ ने मिलकर इन्द्रधनुषी रंगों के मध्य में दिखने वाली काली रेखाओं पर अनुसंधान करते हुए भिन्न-भिन्न तत्त्वों elements के spectrocope test किये तथा पाया कि भिन्न-भिन्न तत्त्वों को जलाने से जो प्रकाश का रंग निकलता है उसके इन्द्रधनुष तथा उनमें काली रेखाओं के नमूने भिन्न-भिन्न होते हैं। किरसॉफ ने सूर्य में तीस तत्त्वों के होने का निश्चित ज्ञान किया। इसी Spectrocope test के द्वारा विलियम क्रुक्स ने थेलियम नामक तत्त्व खोजा। लोकियर ने सूर्य में हीलियम नामक गैस का पता लगाया। इसी विधि से मंगल एवं शुक्र ग्रह पर पाये जाने वाले तत्त्वों के किरण चित्र संग्रह किये गये।

विश्व के वैज्ञानिक अध्ययन का सर्वेक्षण
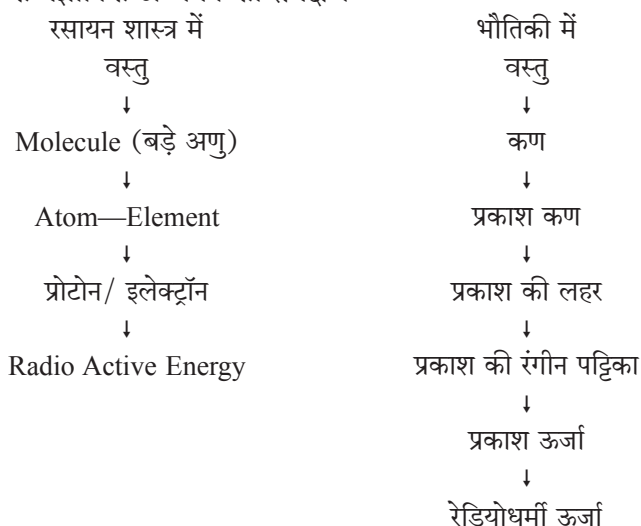
Problems of sc. for discussion in Philosophy—

Law of Causation, Concept of time, concept of space, Determin of freewill.

प्राचीन यूनानी वैज्ञानिक—थेलिस का मत है कि अन्तिम तत्त्व जल है।

एनेग्जिमेंडर का मत है कि सृष्टि का अन्तिम तत्त्व वायु है।

हेराक्लाइटस का मत है कि अन्तिम तत्त्व अग्नि है।

एम्पिडोकिल्स का मत है कि विश्व में चार मूल तत्त्व हैं। पृथ्वी, अग्नि, जल और वायु।

एनेक्सगोरस के मत में मन ही अन्तिम तत्त्व है।

पाइथोगोरस ने कहा कि विश्व में लय Rhythm अथवा समन्वय है। उसने आत्मा के अस्तित्व का भी संकेत दिया है।

डेमोक्रेटिस ने विचार दिया कि शून्य में Atom या परमाणु विचरण करते हैं।

प्लेटो ने विचार को वस्तु से अधिक शक्तिशाली बताया।

अरस्तू को समस्त विज्ञानों का प्रेरक एवं पिता माना जाता है। उसने जीव विकास की कल्पना डार्विन से हजारों वर्ष पूर्व दे दी थी।

यूनानी दर्शन की तुलना में भारतीय विज्ञान एवं दर्शन अधिक विकसित था। महर्षि कपिल ने अपने सांख्य दर्शन में प्रकृति का सुन्दर विश्लेषण किया और सृष्टि

को बनाने वाले तत्त्वों की संख्या गिनाई। महर्षि कणाद ने यूनान के डेमोक्रेटिस से भी पहले अणु-परमाणु का दर्शन संसार के सामने प्रस्तुत किया।

Lump Theory of matter—पश्चिम में विज्ञान की हजारों वर्ष लम्बी कालरात्रि के पश्चात् जब पुनः विज्ञान का जागरण होने लगा तो पहले वैज्ञानिक वस्तु के छोटे टुकड़ों का अध्ययन करते थे। जिन टुकड़ों में लाखों-करोड़ों Molecule मिले रहते थे। यह अध्ययन वैज्ञानिक दृष्टि से शुद्ध नहीं बन सका। क्योंकि जैसे व्यक्ति का एकांत व्यवहार उसके भीड़ के व्यवहार से भिन्न होता है। उसी प्रकार एक Molecule का गुण लाखों Molecule के समूह के गुण से भिन्न होगा।

Molecule theory—19वीं शती के अन्त में पदार्थ के Molecules का अध्ययन किया। Molecule वह छोटा-सा अंश है जिसमें कोई वस्तु प्रकृति में टिक सकती है। जैसे हाइड्रोजन के दो Molecule तथा ऑक्सीजन का एक Molecule मिलकर पानी का एक Molecule बनाते हैं। इसलिए पानी का H_2O=Hydrogen 2 Oxygen 1 कहते हैं। पानी पानी के रूप में टिक सकता है। इसमें द्रवता, गीलापन और रस मिलते हैं। यदि उसे हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के रूप में तोड़ा जाए तो न वह दिखाई देगा न उसमें द्रवता होगी न ही गीला और न रस।

Atomic Theory—Molecule को पुनः Atoms में विभाजित किया जा सकता है। डॉल्टन ने Atomic theory द्वारा विज्ञान में एक नये युग का सूत्रपात किया। उसने कहा कि जल को विद्युत् की धारा के स्पर्श से ऑक्सीजन और हाइड्रोजन में विभाजित किया जा सकता है। अतः जल तत्त्व नहीं वरन् दो तत्त्वों की मिलावट है। अतः वैज्ञानिक विश्लेषण ऐसी Elements या तत्त्व खोजने में है जिन्हें आगे विभाजित न किया जा सके। इस प्रकार हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, हीलियम, कार्बन, सल्फर, सोना, चांदी, शीशा, तांबा, जस्ता, लोहा, सोडियम, पोटेशियम, रेडियम, बेरियम, यूरेनियम, आयोडिन आदि-आदि अनेक तत्त्व (Elements) खोजे गये।

Elements & Atomic Weight—प्रत्येक तत्त्व का Atomic weight (परमाणु भार) भी खोजा गया। अब तक 92 तत्त्व खोजे जा चुके हैं। हाइड्रोजन का परमाणु भार एक है और ऑक्सीजन का परमाणु भार 16 है। यूरेनियम का परमाणु भार 238, लिथियम का 7, सोडियम का 27 और पोटेशियम का 39 है। यदि एक तत्त्व में जितने Atom होते हैं उसमें परिवर्तन किया जा सके तो एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में रूपान्तरित किया जा सकता है। यदि रांगा जिसका परमाणु भार 46 है उसमें से 3 परमाणु निकाले जा सकें तो वह चांदी में रूपान्तरित हो जाता है,

जिसमें 43 परमाणु भार है। इसी प्रकार परमाणुओं को परिवर्तित करने से पारे को सोने में परिवर्तित किया जा सकता है। इसमें सफलता मिली है किन्तु इसकी विधि इतनी खर्चीली पड़ती है कि उपलब्ध सोने की अपेक्षा बनाया हुआ महंगा पड़ता है। आधुनिक रसायन शास्त्र का कथन है कि सृष्टि का अन्तिम तत्त्व Atom ही है। उसी Atom के भिन्न-भिन्न मिश्रणों से भिन्न परमाणु भार वाले तत्त्व Elements बन जाते हैं और परमाणु भार बदलने से एक तत्त्व को दूसरे में बदला जा सकता है। इसको प्रयोग द्वारा सिद्ध करने में विज्ञान को आंशिक सफलता भी मिली है। अनेक वर्षों तक यही माना जाता रहा कि Atom ही सृष्टि का सूक्ष्मतम कण है जिसे सामान्य इन्द्रियों द्वारा जाना नहीं जा सकता। किन्तु, सूक्ष्म यंत्रों द्वारा जाना जा सकता है। इसी से सारी सृष्टि बनी हुई है।

Nuclear Theory—इस Atomic theory के बाद रसायन और भौतिकी दोनों ने Nuclear Theory को मान्यता दी। जब Atom को पुनः इलेक्ट्रॉन और प्रोटोन में तोड़ा जा सका तो परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म अंशों का पता लगा। केन्द्रक (Nuclear) में प्रोटोन रहता है और nuclear के इर्द-गिर्द इलेक्ट्रॉन बहुत तेज गति से घूमते रहते हैं। Nuclear का भार इलेक्ट्रॉन्स की अपेक्षा दो हजार गुणा अधिक रहता है। Nuclear के गिर्द इलेक्ट्रॉन्स की इस तीव्र परिक्रमा के कारण इसे Nuclear theory कहा गया है। इसके प्रतिपादक नील्स बोर आदि वैज्ञानिक हैं। इसी ने कहा कि इलेक्ट्रॉन कंगारू छलांग के समान मनमाने तौर पर भीतर की कक्षा से बाहर और बाहर की कक्षा से भीतर छलांग लगा सकता है। जैसे सौरमण्डल में सूर्य ग्रहपति होने से सबसे भारी है और नवग्रह उसकी परिक्रमा करते रहते हैं। उसी प्रकार सृष्टि में ऊपर से स्थिर दिखने वाले प्रत्येक कण के भीतर अदृश्य Atoms है और उनके भीतर अदृश्य केन्द्रक। इर्द-गिर्द सूक्ष्म अदृश्य इलेक्ट्रॉन बहुत तीव्र गति से परिक्रमा कर रहे हैं। इस दृष्टि से सृष्टि की हर वस्तु जो ऊपर से स्थिर दिखाई देती है, वास्तव में बहुत भीषण गति से गतिमान है। यह बाह्य इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। पर सूक्ष्म वैज्ञानिक यंत्रों से परखा जा सकता है। इसी भाव को ईशोपनिषद् में दर्शाया गया—

'तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके'

वह चलता है और वह बिल्कुल नहीं चलता। वह दूर से दूर में और निकट से निकट में है। यह कथन आत्मतत्त्व और Atom तत्त्व दोनों पर लागू रहता है।

Radio Active Energy—लुई डी ब्रोगली ने कणिका को प्रकाश में रूपान्तरित करने और प्रकाश को कण में रूपान्तरित करने का सिद्धान्त रखा। जो वस्तु हमें दिख रही है उसके दिखने का प्रमाण केवल मात्र यही है कि उससे चलकर आने वाला प्रकाश हमें दिख रहा है। प्रत्येक वस्तु को छू कर हम उसकी

सत्ता की जांच नहीं कर सकते। आकाश के दूरस्थ तारों को हम छू नहीं सकते। केवल प्रकाश के रूप में देख सकते हैं। आकाश को तो हम किसी इन्द्रिय द्वारा नहीं जान सकते। कुछ तारे इतनी दूरी पर हैं कि उनका प्रकाश हम तक लाखों प्रकाशवर्षों में पहुंचता है। आज हम जिन प्रकाश पिण्डों को आकाश में देख रहे हैं हो सकता है उन तारों के पिण्ड नष्ट हो चुके हों और उनसे चला हुआ प्रकाश हमें लाखों वर्षों के बाद आज दिखाई दे रहा है। इसलिए पिण्ड प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है। आइंस्टीन की शब्दावली में Mass energy में परिवर्तित होता है। इसके उलट ऊर्जा पदार्थ में परिवर्तित हो सकती है।

$E = MC^2$

Radium Radiation–Radio Active Energy—रेडियम के Atom अपने आप समय बीतने के साथ टूटते रहते हैं और रेडियम से निकलने वाली ऊर्जा रेडियोधर्मी ऊर्जा (Radio Active Energy) के रूप में निकलती रहती है। इस प्रकार रेडियम अथवा यूरेनियम की मात्रा कम होती जाती है। अर्थात् रेडियम Lad शीशा नामक धातु तथा हीलियम नामक गैस में परिवर्तित होता रहता है। रेडियम के समान ही जो ऊर्जा केन्द्रक के इर्द-गिर्द घूमते हुए इलेक्ट्रॉन के एक कक्षा से दूसरी कक्षा तक छलांग लगाने में विकिरणित होती है उसे भी रेडियम के नाम पर Radio Active Energy (रेडियोधर्मी ऊर्जा) कहा गया।

Indeterminacy अनिश्चितता—रेडियम के Atoms के टूटने का कारण रदरफोर्ड ने Cosmic Rays को माना था किन्तु यह सिद्ध नहीं हो सका। अतः विज्ञान के सामने यह अनिश्चितता बनी हुई है कि किस अदृश्य कारण से रेडियम के किस अज्ञात Atom को कब टूटना पड़ेगा। वैसे ही जैसे किस अज्ञात कारण से, किस अज्ञात व्यक्ति को कब मरना पड़ेगा। जैसे मानव सम्बन्ध में इस अनिश्चितता का कारण अदृश्य भाग्य को मान लिया जाता है। उसी प्रकार विज्ञान के सम्मुख भी ऐसी ही समस्या मुंहबाये खड़ी है।

इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन के समान न्यूट्रोन का भी आविष्कार हुआ। न्यूट्रोन, पोजिट्रोन का भी आविष्कार हुआ। न्यूट्रोन एक बड़े आकार का कण है जो प्रोटोन के बराबर होता है पर उसमें कोई विद्युत् का आवेश नहीं होता। इलेक्ट्रॉन में Negative charge होता है, प्रोटोन में Positive charge होता है। एक कण का आविष्कार हुआ जिसे मेसोन कहा गया जिसका अर्थ है मध्यवर्ती। इसका Mass परिमाण प्रोटोन और इलेक्ट्रॉन के मध्यवर्ती भार का होता है। एक मेसोन का विच्छेदन होने पर एक इलेक्ट्रॉन और न्यूट्रोन की उत्पत्ति होती है। यदि न्यूट्रोन शून्य में रहे तो 15 मिनट के भीतर नष्ट हो जाता है तो उसमें से एक इलेक्ट्रॉन, एक प्रोटोन और एक न्यूट्रोन की पुनः उत्पत्ति हो जाती है। इस प्रकार वैज्ञानिकों को

1933 तक 6 प्रकार के कणों का ज्ञान हो चुका था—इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रोन, फोटान, पोजिट्रोन और न्यूड्रोन। 1947 तक 14 कणों का, 1957 तक 30 कणों का और 1967 तक 230 का पता लग चुका है।

परमाणु स्तर पर पहले 92 तत्त्व खोजे गये थे। अब 103 तत्त्व माने जा रहे हैं। हाइड्रोजन के परमाणु में एक प्रोटोन और छह इलेक्ट्रॉन होते हैं। लोरेसियम के परमाणु में 10, प्रोटोन 103 इलेक्ट्रॉन और 154 न्यूट्रोन होते हैं।

श्रोडिंजर की तरंग यांत्रिकी—श्रोडिंजर का मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक कण मूल रूप में तरंग ही है। जिसे हम वस्तु समझते हैं। वह वास्तव में प्रकाश की लहर होती है। कणिका एवं तरंग को अलग नहीं किया जा सकता। यदि किसी कण और उस पर विभिन्न बलों का ज्ञान हो तो उसकी विभिन्न प्रकार की तरंगों और उनकी ऊर्जाओं का तरंग-फलन के प्रयोग द्वारा परिकलन किया जा सकता है।

किसी भी भौतिक सत्ता के दो पहलू अनिवार्य रूप से होते हैं—कणिका एवं तरंग। इलेक्ट्रॉन केवल मात्र कणिका के रूप में कभी नहीं पाया जा सकता। इलेक्ट्रॉन को सतत विद्युत् आवेश के रूप में पाया जाता है और वह विद्युत् आवेश परमाणविक केन्द्रक के चारों ओर वैद्युतिक क्षेत्र के रूप में फैला हुआ रहता है। इसमें सदा कम्पन होता रहता है।

भौतिक सत्ताएं तरंगों से बनी है। वे अत्यन्त गत्यात्मक एवं परिवर्तनशील है। न्यूटन के भौतिकी के प्रत्ययों में मूलभूत परिवर्तन हो चुका है। भौतिक पदार्थों में तरंग ब्रह्म की चेतना की अभिव्यक्ति है। चेतना भौतिक पदार्थों में स्पन्दन के रूप में अन्तर्निहित है।

इस प्रकार भौतिकी की खोजें अणु-परमाणु केन्द्रक (नाभि) इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रान आदि कणों से होते हुए तरंग कणिका तक पहुंच गई। अंत में यह निष्कर्ष निकला कि तरंग कणिकाओं में स्वतंत्र इच्छाशक्ति है, उनकी गति के यांत्रिक नियम निर्धारित नहीं किये जा सकते। अर्थात् वे एक चेतन सत्ता है। फलस्वरूप भौतिकी में जड़-चेतन का आत्यंतिक विभाजन मिट गया। इसलिए श्रोडिंजर ने स्वयं लिखा है—'अब तत्त्वज्ञान के रहस्यवाद से दूर न रहकर मैं उनका पूरा उपयोग करूंगा।' वे आगे कहते हैं—'सीधे-सादे रूप में यह घोषणा करते हुए मुझे कोई हिचक नहीं कि समान वातावरण में जीवन के अनुभव की व्याख्या करने के लिए वास्तविक भौतिक संसार की स्वीकृति रहस्यात्मक और तात्त्विक है।'

वेदान्त दर्शन की स्वीकृति करते हुए वे कहते हैं कि चिद्बिन्दु एक ही है। वह मानते हैं कि चिद्बिन्दुओं का सिद्धान्त वेदान्त दर्शन में परिणत हो जाता है। इस

दर्शन के अनुसार हम सभी चेतन प्राणी एक ही सत्ता के अनेक रूप हैं। वह एक तत्त्व पाश्चात्य शब्दावली में God और उपनिषद् की शब्दावली में ब्रह्म है।

श्रोडिंजर लिखते हैं—अद्वैत सिद्धान्त के निम्नलिखित नैतिक निष्कर्ष स्वीकार करने चाहिए—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।। 13/27, गीता

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।। 13/28, गीता

समस्त विनाशशील प्राणियों में समभाव से स्थित विनाश रहित परमेश्वर को देखता है वही (यथार्थतः) देखता है। क्योंकि सर्वत्र समभाव से अवस्थित ईश्वर को समरूप से देखने वाला अपने द्वारा अपने को नहीं मारता। इससे वह परमगति को प्राप्त होता है। प्राणीमात्र के प्रति दया और करुणा के भाव यहां चरम रूप में प्रतिष्ठित है।

उपनिषदों का अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादित करता है कि प्रत्यक्ष भेद माया है और मूलभूत एकता ही सत्य है।....साधना क्रम अनेक जन्मों तक चलता है और अन्ततः साधक को किसी एक जीवन में प्रज्ञा, अवकाश और शुद्ध साधना की इतनी मात्रा उपलब्ध हो जाती है जिससे वह अद्वैत सिद्धान्त को ग्रहण कर मुक्त हो सके। इस प्रकार श्रोडिंजर ने पदार्थ से विकिरणित होने वाली ऊर्जा को भौतिक ऊर्जा न कहकर आध्यात्मिक ऊर्जा कहा। एक नोबल पुरस्कार विजेता, विश्वविख्यात वैज्ञानिक द्वारा पदार्थ के अन्तिम विश्लेषण पर चेतन एवं अभौतिक सत्ता की स्वीकृति यह सिद्ध करती है कि आधुनिक विज्ञान अब वेदान्त के निकट पहुंच गया है।

श्रोडिंजर के समान सर जेम्स जीन्स, ओपनहाइमर, एडिंगटन, डॉ. एलेक्सिस कैरल और वर्तमान के फ्रिटजाफ केपरा आदि पश्चिम के चोटी के वैज्ञानिक यह घोषणा करने लगे हैं कि ऊर्जा का स्वरूप जड़ न होकर चेतन ही है।

इस प्रकार आधुनिक विज्ञान वेदान्त के मन्दिर की ड्योढ़ी में चरण रख रहा है। अभी तक वेदान्त मन्दिर के गर्भ गृह में नहीं पहुंचा। परम चैतन्य की झलक मिल जाने पर पूरे विज्ञान जगत् का रूपान्तरण हो जाएगा। विज्ञान ही न रहकर दर्शन में परिणत हो जाएगा।

आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान भारतीय दार्शनिक मान्यता के निकट पहुंच रहा है। सांख्य दर्शन सृष्टि को प्रकृति की लीला मानता है। प्रकृति पुरुष की इच्छानुसार सृष्टि की रचना करती है। वेदान्त के मत में प्रकृति या माया स्वतंत्र सत्ता न होकर ब्रह्म की सर्जना या रचना शक्ति का ही नाम है। ब्रह्म के संकल्प से ही ब्रह्म की

शक्ति माया (या प्रकृति) अनन्त ब्रह्माण्ड रच देती है। उसे रचने के लिए किसी बाह्य पदार्थ या साज-सामान की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस दृष्टिकोण से ब्रह्म सृष्टि को पैदा नहीं करता वरन् अपनी संकल्प शक्ति से स्वयं सृष्ट रूप बन जाता है। इसे ही अभिन्ननिमित्तोपादान कारण, इसे ही Immanent Causality (अर्थात् अन्तर्भूत कार्य-कारणवाद) कहते हैं। यही साकार ब्रह्म है।

'हरिरेव जगत् जगदेव हरि।' हरि ही जगत् और जगत् ही हरि है।

इसी आधार पर प्राचीन ऋषियों ने कहा—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अथवा 'सर्वं शक्तिमयं जगत् अथवा 'सर्वं विष्णुमयं जगत्' या 'सर्वं कृष्णमयं जगत्'। कबीर ने गाया—'ब्रह्म बीज का सकल पसारा।' तुलसीदास ने मानस में वंदना की—'सीयराम मय सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।' सारे विश्व का मूल बीज जो एक परम तत्त्व है जो सारी सृष्टि का सृष्टा है, नियामक है और सृष्टि में व्याप्त होने के साथ-साथ सृष्टिमय है, विश्वरूप है तथा विश्वातीत भी है, उसे जानना ही जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है।

आधुनिक विज्ञान भौतिकवाद का भवन खड़ा करके उसमें भौतिक प्रयोगशालाएं रचकर उसमें भौतिक पदार्थों का विश्लेषण-परीक्षण कर अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि सृष्टि का अन्तिम सत्य भौतिक पदार्थ नहीं वरन् एक विश्वव्यापी ऊर्जा है, जो भौतिक पदार्थों के रूप में साकार भी हो जाती है। इसमें व्याप्त भी है उसका सारतत्त्व भी है और स्वयं अभौतिक स्वरूप वाली है। अत: Materialism के स्थान पर ऊर्जावाद Energism का सिद्धान्त घोषित किया जा रहा है। यह पराशक्ति, महाशक्ति, ब्रह्मशक्ति की ही वैधानिक स्वीकृति है।

अमरीकन महिला ह्वीलर विल्लाक्स कहती है—भारत वेदों की भूमि है, जिसके अन्दर न केवल पूर्ण जीवन के पूर्णत्व के लिए धार्मिक तत्त्वों का निरूपण है, वरन् उन तथ्यों का भी निर्देश है जिनको आज विज्ञान शास्त्र ने सत्य प्रमाणित किया है। वैदिक ऋषियों को विद्युत शक्ति, रेडियम, इलेक्ट्रोन तथा वायुयान आदि सब बातों का ज्ञान था, ऐसा प्रतीत होता है।

× × ×

यह एक बड़ी आश्चर्यजनक बात है। ईश्वरीय धर्मग्रंथों में एकमात्र वेद ही ऐसा है जिसके विचार वर्तमान विज्ञान के साथ पूर्ण साम्य रखते हैं क्योंकि वेद में भी विज्ञान के अनुसार विश्व की क्रमिक रचना का प्रतिपादन है। **—श्री जकोलियट**

कर्म सिद्धान्त

1. हिन्दू दर्शन के चार आधारभूत सिद्धान्त :

हिन्दू धर्म के लगभग सभी मत-सम्प्रदायों के निम्नलिखित चार सामान्य दार्शनिक आधार हैं—

(क) आत्मा अमर है। (सच्चा मानव आत्मा ही है Soul in the Real Man within man)

(ख) जीवन का अन्तिम लक्ष्य है अमरत्व अथवा मोक्ष।

(ग) जब तक मोक्ष प्राप्ति नहीं तब तक पुनर्जन्म।

(घ) कर्म सिद्धान्त—मनुष्य के किये हुए अच्छे-बुरे कर्मों का फल जन्म-जन्मान्तर तक उसके साथ जाता है।

इनमें से प्रथम दो सिद्धान्त शाश्वत हैं—

आत्मा का अमरत्व एवं मोक्ष

दो सिद्धान्त व्यावहारिक एवं अस्थायी हैं—पुनर्जन्म एवं कर्म सिद्धान्त।

जब तक मोक्ष का लक्ष्य प्राप्त नहीं होता तब तक बीच के पड़ाव की तरह दोनों सिद्धान्त कार्य करते हैं। जब मोक्ष प्राप्त हो जाता है तब पुनर्जन्म एवं कर्म सिद्धान्त दोनों के चक्र से मुक्ति मिल जाती है। मुक्ति ही है इन दोनों से छुटकारा।

आत्मा स्वरूप से जो अमर ही है जब अपने अमरत्व के जन्मसिद्ध अधिकार को पा लेता है तब उसी को मोक्ष कहा जाता है। अंत में अमर अमर में मिलकर एक अमरत्व का सिद्धान्त बचता है। भारतीय संस्कृति उसी अमरत्व की साधना एवं अमरत्व की सिद्धि है।

2. कर्म सिद्धान्त का सूत्र

कर्म सिद्धान्त का सूत्र है 'अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'। मैंने जो अच्छे या बुरे कर्म किये हैं उसका फल मुझको भोगना ही

पड़ेगा। यदि कर्म के इस नियम को नहीं मानें तो दो प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते हैं। पहला कृत-विप्रणाश या कृत हानि। जो अच्छे-बुरे कर्म मनुष्य ने किये हैं उसे उनका फल नहीं मिलेगा। दूसरा अकृताभ्युगम् अर्थात् कर्म मनुष्य ने नहीं किये हैं उनका फल उसे मिलने लग जायेगा। इन दोनों दोषों के परिहार के लिये कर्म के इस सिद्धान्त को मानना आवश्यक है कि बिना भोगे कर्म के फल का नाश नहीं होता। हमारा दैनिक अनुभव है कि जन्म से ही असमानता शरीरगत, मनगत, बुद्धिगत, धनगत आदि होती है। इसका कारण पूर्वजन्म कृत कर्म है, नहीं तो जन्म से ही विषमता की व्याख्या नहीं हो सकेगी और बिना किये हुए कर्मों का फल भोगना पड़ जायेगा। हम वर्तमान जीवन में इतने अच्छे-बुरे कर्म कर लेते हैं जिसका फल वर्तमान जीवन में और वर्तमान शरीर से भोग नहीं सकते। इसके लिये मृत्यु के पश्चात् भी जीवन एवं अन्यान्य देह (नारकीय शरीर, अधम शरीर, स्वर्गीय शरीर आदि अनेक योनियां) और अन्यान्य लोकों (जैसे स्वर्ग, नरक व अन्य देवों के लोक आदि) को मानना अनिवार्य है।

3. गति, क्रिया और कर्म

(क) गति—किसी निर्जीव वस्तु का हिलना डुलना गति कहलाता है (Motion)। गाड़ी का चलना, घड़ी के पेंडुलम का हिलना, पंखा चलना ये गति है, क्रिया नहीं।

(ख) क्रिया—किसी सजीव वस्तु का बिना संकल्प के गति करना या चलना फिरना क्रिया कहलाता है (Activity)। हृदय का धड़कना, सांस का चलना, आंख की पलकों का गिरना आदि।

(ग) कर्म—किसी सजीव चेतन प्राणी का जान-बूझकर संकल्प से कुछ भी करना कर्म कहलाता है। जैसे, चालाकी से आंख मारना, श्रद्धा से आंख बन्द करना, नमस्कार में हाथ उठाना, अथवा ताड़ना के लिए हाथ उठाना।

गति + जीवन = क्रिया

क्रिया + संकल्प = कर्म

4. संकल्प की दृष्टि से कर्म के प्रकार
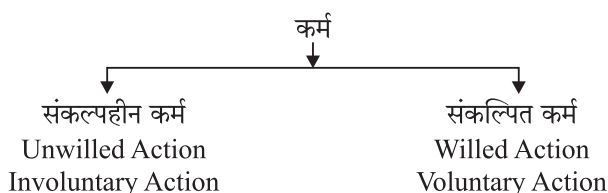
1. Reflex Action : सहज शारीरिक-क्रिया

इसमें मस्तिष्क काम नहीं करता। रीढ़ की हड्डी (मेरुदण्ड) से ही प्रतिक्रिया होती है। आंख की पलक का हिलना, धूप में आंख का तनिक बंद होना, सुप्तावस्था में मच्छर उड़ाना, खुजली करना, करवट बदलना।

2. Accidental Action : आकस्मिक घटना

अपघटना के कर्म जैसे मार्ग चलते किसी महिला से टकरा जाना, किसी भीड़ में पांव के नीचे आकर बच्चे का दब जाना, कुंभ के मेले में किसी का दब जाना।

3. Hypnotic Action : सम्मोहन कर्म

जब मनुष्य के मन को सम्मोहित कर दिया जाता है और जब मनुष्य स्वतंत्र संकल्प नहीं कर सकता उस अवस्था में किये जाने वाले कर्म को सम्मोहन कर्म कहते हैं। जैसे आनन्दमार्गी बाबा द्वारा अपने चेलों को सम्मोहित करके हत्याएं करवाना, पाखण्डी साधुओं द्वारा स्त्रियों एवं बच्चों से अनुचित कर्म करवाना। भड़का कर करवाने वाले कार्य।

4. Forced Action : बाध्य कर्म

वह कर्म जिसमें मनुष्य का अपना संकल्प न हो किन्तु किसी दूसरे के संकल्प द्वारा मजबूर होकर उसे कर्म करना पड़े। जैसे—राजनीतिक बंदियों

संकल्पित कर्म वह है जिनमें जानबूझकर अपने होश हवास में किसी स्पष्ट भावना के साथ कर्म करता है।

उदाहरण—

1. भूखे को अन्न, प्यासे को जल, वस्त्र विहीन को वस्त्र देना।
2. राजा हरिश्चन्द्र द्वारा राज्य दान करना।
3. राजा शिवि का कबूतर की रक्षार्थ अपने हाथ का मांस देना।

भावुक कर्म और भावनामय कर्म—Centimental Action and Devoted action :

(क) भावुकता मन की एक लहर है जो स्थायी नहीं होती। इसकी लहर में किया हुआ कर्म अधिक महत्त्व नहीं रखता। ऐसे कर्म के लिए कर्ता की बाद में रुचि पलट जाती है तथा कई बार पछताना भी पड़ जाता है। भावुकता में क्रान्ति के नारे लगाना पर पुलिस का डण्डा देखकर भाग खड़ा होना। भावुकता में सम्पत्ति दान करना बाद में केस लड़ना।

(ख) भावनामय कर्म अच्छी प्रकार सोच विचार कर सुस्पष्ट दृढ़ भावना के साथ किया जाता है। ऐसे कर्म के लिए न स्वयं को पछताना पड़ता है और न समाज को ऐसे कर्म की प्रतिक्रिया में ग्लानि होती है तथा न की हुई तपस्या का नाश होता है।

को जेल में भूखा-प्यासा, सता कर माफीनामा लिखवाना, झुकाना आदि। हिटलर द्वारा Eachman को मजबूर कर, भय दिखाकर उसके द्वारा यहूदियों का सर्वसंहार कराना।

5. क्षणिक आवेश में कर्म

ये ऐसे कर्म हैं जो किसी क्षणिक आवेश में कर दिये जाते हैं। किन्तु उसमें स्पष्ट भावना का अभाव ही रहता है। जैसे—क्षणिक जोश में आकर हत्या या आत्महत्या कर बैठना, क्षणिक आवेग में घर छोड़कर साधु बन जाना, क्रोध में कुछ अनुचित कर बैठना। जिनके संवेग वश में नहीं रहते वे ऐसे कर्म करते हैं। संवेगों पर विवेक, विचार का अंकुश रहने से मनुष्य ऐसे कर्मों से बच जाता है।

1. JP आंदोलन में सहभागी होना।
2. देश की मांग पर सुभाष बोस का सर्वस्व त्याग। राणा प्रताप का अकबर के विरुद्ध स्वाभिमान और स्वधर्म की रक्षार्थ आजन्म संघर्षरत रहना।

3. Habitual action : अभ्यस्त कर्म

ये ऐसे कर्म हैं जो प्रारम्भ में किसी संकल्प से आरम्भ किये जाते हैं पर धीरे-धीरे स्वभाव बन जाते हैं तथा संकल्पहीन कर्मों की तरह बिना प्रयास के स्वतः अपने आप होने लगते हैं। Habit are willed actions in beginning and become unwilled later on. जुआ खेलना, शराब पीना Eachman द्वारा प्रथम में कठिनाई से 1-2 यहूदियों को मारना। बाद में स्वभाव बन जाने से लाखों की हत्या करना।

लोकमान्य तिलक द्वारा प्रारम्भ में निष्काम सेवा प्रयत्नपूर्वक करते-करते निष्काम सेवा का स्वभाव बन जाना।

5. कर्म एवं कर्ता

कोई भी कर्म किसी कर्ता द्वारा ही होता है अतः कर्म और कर्ता में कर्ता का ही महत्त्व अधिक ठहरता है।

(क) मीमांसा दर्शन में कर्म को ही सबसे बलवान माना गया है। वे कर्म अथवा यज्ञ को ही भगवान् मानते हैं।

(ख) न्याय दर्शन में कर्ता को कर्म से अधिक महत्त्व दिया गया। जो उचित ही है। कर्ता चेतन है कर्म जड़। कर्ता ही कर्म को पहचानता है कर्म कर्ता को नहीं पहचानता। हत्यारा हत्याकर्म को पहचानता है पर हत्याकर्म कर्ता (हत्यारे) को नहीं पहचानता।

व्यवहार जगत् में जीव (पुरुष) Individual soul ही कर्मों का कर्ता है। ब्रह्माण्ड में ईश्वर ही सृष्टिकर्ता है। (कर्तेति नैयायिकाः) वही कर्मों के विधान का शासक भी है।

(ग) जैन दर्शन भी आत्मा को कर्ता मानता है।

(घ) बौद्ध दर्शन आत्मा की सत्ता के बारे में स्पष्ट नहीं पर वह चैतन्य की धारा को ही कर्ता मानते हैं। Soul is series of state linked by chain of memory आत्मा चेतना के भिन्न-भिन्न कणों की धारा है जो स्मृति की शृंखला से बंधे हुए हैं।

आलोचना

यानी स्मृति की विस्मृति होने से चेतना की धारा उस अच्छे या बुरे कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरती है। जैसे कोई शराब पी कर हत्या करे, थप्पड़ मारे। अपमान करके भूल जाने से क्या वह उस फल से वंचित हो जाएगा? इससे तो सारा कर्म विधान बिगड़ गया, नष्ट हो जाता है। अतः स्थायी पुरुष को कर्ता माने बिना कर्म विधान नहीं चल सकता।

(ङ) वेदान्त दर्शन आत्मा को ही साक्षात् ब्रह्म मानता है अतः आत्मा को केवल साक्षी और अकर्ता मानता है। गीता की शब्दावली कर्म में अकर्म को देखती है। वेदान्त के मत में कर्मों का कर्ता आत्मा नहीं अन्तःकरण है। वही कर्मफल के रूप में सुख-दुःख भी भोगता है।

6. कर्म के पांच हेतु

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्।। 18/13, गीता

और हे महाबाहो! सम्पूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिए अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों के सिद्ध होने में यह पांच हेतु सांख्य सिद्धान्त में कहे गये हैं। उनको तू मेरे से भली प्रकार जान।।13।।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्।। 18/14, गीता

हे अर्जुन! इस विषय में आधार (जिसके आश्रय से कर्म किये जायें, उसका नाम 'आधार' है।) और कर्ता तथा न्यारे-न्यारे करण (इन्द्रिय) और नाना प्रकार की न्यारी-न्यारी चेष्टा एवं वैसे ही पांचवां हेतु दैव (पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मों के संस्कारों का नाम दैव है) कहा गया है।।14।।

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः।। 18/15, गीता

क्योंकि मनुष्य मन, वाणी और शरीर से शास्त्र के अनुसार अथवा विपरीत भी जो कुछ कर्म आरम्भ करता है। उसके यह पांचों ही कारण हैं।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।। 18/16, गीता

परन्तु ऐसा होने पर भी अशुद्ध बुद्धि सत्संग और शास्त्र के अभ्यास तथा भगवत् अर्थ कर्म और उपासना के करने से, मनुष्य की बुद्धि शुद्ध होती है। इसलिए जो उपरोक्त साधनों से रहित है, उसकी बुद्धि अशुद्ध है। ऐसा समझना चाहिए। अशुद्ध होने के कारण उस विषय में केवल शुद्ध स्वरूप आत्मा को कर्ता देखता है, वह मलिन बुद्धिवाला अज्ञानी यथार्थ नहीं देखता है।

अधिष्ठान का अर्थ है आधार या आश्रय। कर्म के लिए सबसे प्रथम हेतु अधिष्ठान कहा गया है। अधिष्ठान शब्द की व्याख्या तीन प्रकार से की गयी है—

1. शरीर—संत ज्ञानेश्वरजी के मत में देह ही अधिष्ठान कारण है। क्योंकि इस देह में ही भोक्ता अपने भोग्य विषयों के साथ निवास करता है।

अतः बिना शरीर के कर्म होने में कठिनाई है।

(i) लोकमान्य तिलक के मत में अधिष्ठान का अर्थ है वह स्थान या देश जिसका आश्रय लेकर कर्म किया जाता है।

(ii) वेदान्त के मत में आत्मा या ब्रह्म ही सारे विश्व का अधिष्ठान है।

यह स्पष्ट है कि बिना आत्मा के (चैतन्य के) भी कर्म नहीं हो सकता। बिना ब्रह्म की सत्ता के भी कर्म नहीं हो सकता। बिना देह के आधार पर कर्म नहीं हो सकता तथा बिना स्थान विशेष के भी कर्म नहीं हो सकता।

कर्म का भौतिक अधिष्ठान शरीर है। जागतिक अधिष्ठान पृथ्वी है तथा आध्यात्मिक अधिष्ठान आत्मा या ब्रह्म है। कर्ता वह जीवित चेतन संकल्पवान जीव है जो कर्म करता है।

2. सांख्य के मत में कर्ता पुरुष। जैन दर्शन में आत्मा कर्ता है। वेदान्त के अनुसार कर्ता आत्मा नहीं वरन् जीवात्मा है। जिस प्रकार तालाब के ऊपर से बादल उठते हैं तथा आकाश में तैरते हुए तालाब में प्रतिबिम्बित भी होते हैं। उसी प्रकार शुद्ध आत्मा अन्तःकरण रूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित हो जीवात्मा का रूप धारण कर लेता है। जब तक कर्तापन का अहंकार बना रहता है तब तक वह जीवात्मा के रूप में कर्ता एवं भोक्ता बना रहता है। ज्ञान होते ही वह अहंकार से मुक्त हो शुद्ध आत्मरूप में स्थित हो जाय तब जीव का जीवत्व लय होकर वह ब्रह्मरूप बन जाता है।

3. करण—करण का अर्थ इन्द्रिय। पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और चार अंतःकरण ये चौदह करण हैं। इनके बिना भी कर्म नहीं हो सकता।

4. चेष्टा—इन्द्रियों द्वारा कुछ करने का प्रयास चेष्टा है। कर्म के लिये यह भी आवश्यक है।

5. दैव—दैव शब्द की व्याख्या कई प्रकार से की जाती है— (क) तिलकजी के मत में दैव का अर्थ भाग्य है, जो पिछले संचित कर्मों का फल ही है। हमारे वर्तमान कर्मों के परिणाम को हमारे पहले के संचित कर्मों का फल भी प्रभावित करता है। हम जो आज कर्म कर रहे हैं उस पर भी पिछले कर्मों का संस्कार हमें प्रेरित कर रहा है तथा पिछले कर्मों का योगफल हमें भोगना है। उसके अनुसार हम तदनुरूप कर्मों में प्रेरित किये जाते हैं।

(ख) ज्ञानेश्वरजी के मत में दैव का अर्थ है इन्द्रियों के पीछे उन्हें बल देने वाले देवता। जैसे चक्षु के पीछे सूर्य देवता। रसना के पीछे जल देवता, स्पर्श के पीछे वायु देवता।

(ग) कुछ विचारक दैव का अर्थ दैवी शक्ति या ईश्वरीय शक्ति से लेते हैं। उसके बिना भी कर्म नहीं हो सकता।

7. तीन कर्मचोदना—व्याकरण शास्त्र में चुद् धातु प्रेरणार्थक है। कर्म के प्रेरक तीन हैं। इसे गीता में कर्मचोदना कहा गया यानी कर्म को प्रेरित करने वाला कहा गया है। ये तीन हैं—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय। किसी भी कर्म के करने से पहले उस कर्म के विषय में ज्ञान अनिवार्य है। बिना ज्ञान के कर्म असम्भव है। ज्ञान के लिए कोई ज्ञाता भी अनिवार्य है। जो जानने योग्य वस्तु है, वह है ज्ञेय। इन तीनों की प्रेरणा से ही कर्म हो सकता है। जैसे—हनुमानजी सीताजी को राम का संदेश देना चाहते हैं। बिना सीता को जाने संदेश नहीं दिया जा सकता है अतः सीता ज्ञेय है। हनुमानजी ज्ञाता हैं और सीता को पहचानना ही ज्ञान है। इन तीनों के मेल के बाद हनुमानजी सीताजी के सामने प्रकट होकर बात करते हैं। इस प्रकार तीन प्रकार की कर्म प्रेरणा है—

(क) ज्ञान—विषय का ज्ञान, लक्ष्य का ज्ञान, क्रिया का ज्ञान, मार्ग का ज्ञान।

(ख) ज्ञेय—जानने योग्य वस्तु।

(ग) ज्ञाता—परिज्ञाता अन्तःकरण उपाधि से परिकल्पित भोक्ता।

8. कर्म के तीन संग्रह—गीता की परिभाषा में गीता में तीन संग्रह है—कर्ता, करण (इन्द्रियां) और क्रिया। जैसे विद्यार्थी (कर्ता) अपने अन्तःकरण की प्रेरणा के अनुसार अपने हाथ रूपी करण से परीक्षा भवन में उत्तर लिखने की क्रिया करता है। इन तीनों के मेल (संग्रह) से कर्म बनता है। इनमें से एक भी कम होने से कर्म नहीं बन सकता है।

कर्म के तीन संग्रह या आश्रय

(क) करण—इन्द्रिय 5+5+4

(ख) कर्म—वास्तविक क्रिया

(ग) कर्ता—अहंकारयुक्त अन्तःकरण

6 कारक

कर्म संग्रह	कर्ता-1	कर्ता राम ने
	कर्म-2	कर्म रावण को
	करण-3	करण धनुष द्वारा (से)
	ज्ञेय-4	सम्प्रदान मर्यादा स्थापन के लिए
	ज्ञान-5	उपादन प्राण से वंचित कर
	ज्ञाता-6	अधिकरण शान्ति का राज्य स्थापित किया।

इन कारकों से आत्मा निर्लिप्त एवं असङ्ग रहता है। सूर्य सारे जगत् को प्रकाशित करता है। सबके नेत्रों को प्रकाश देता है। सबको कर्मों में प्रेरित करता है किन्तु लोगों के नेत्र के दोषों से सदा निर्लिप्त रहता है। उसी प्रकाश में कोई आध्यात्मिक स्वाध्याय करता है, और कोई अपवित्र पुस्तकें पढ़ता है, पापकर्म करता है। सूर्य कमल को भी प्रकाशित करता है और मल को भी प्रकाशित करता है पर मल और कमल दोनों से अलिप्त रहता है। इसी प्रकार सबके अन्तर में जो आत्मारूपी चैतन्य है वह उन्हें सत्ता, स्फूर्ति देता है किन्तु उनके अच्छे-बुरे कर्मों से लिप्त नहीं होता है।

बाह्य कर्म और आन्तरिक कर्म

कर्म के दो रूप हैं बाह्य कर्म और आन्तरिक कर्म। कर्म का बहिरंग रूप तो शारीरिक क्रिया है उससे भ्रान्ति पैदा होती है। जैसे एक सर्जन और एक डाकू दोनों छुरे द्वारा किसी व्यक्ति का पेट चीरते हैं, पर दोनों की आन्तरिक भावना भिन्न-भिन्न होने के कारण दोनों का कर्म भिन्न-भिन्न माना जायेगा और भिन्न-भिन्न फल मिलेगा। बाह्य कर्म की तुलना में आन्तरिक कर्म का महत्त्व अधिक है। तभी एक कथा बड़ी प्रचलित है। एक साधु और एक वेश्या आमने-सामने रहते थे। दोनों की साथ-साथ मृत्यु हुई तो वेश्या को स्वर्ग और साधु को नरक मिला। साधु ने प्रतिवाद किया तो उसे बताया तुम ऊपर से तो जप-तप करते थे पर तेरा मन सदा वेश्या में पड़ा रहता था कि वह कैसे-कैसे गुलछर्रे उड़ा रही है, आनन्द भोग रही है। वेश्या सदा पश्चात्ताप से भरी रहती थी कि किस पाप का फल भोग रही हूं और उसका मन सदा आपमें लगा रहता था कि वह कैसे भगवान् के भजन में निमग्न है। उसका आनन्द ले रहा है।

सञ्चित, प्रारब्ध और क्रियमान कर्म

सञ्चित कर्म—जन्म-जन्मान्तर के अभुक्त कर्मों का संग्रह है। प्रारब्ध कर्म- इस संचित कर्म का छोटा-सा हिस्सा जिसने अपना फल देना प्रारम्भ कर

दिया है। क्रियमाण कर्म उसको कहते हैं जो हम इस जन्म में कर रहे हैं। जिसमें कुछ का फल हमें वर्तमान में मिल जाता है और कुछ कर्म का फल वर्तमान में नहीं मिलता। वह संचित में जमा होते जाते हैं। कर्म का फल भी तीन प्रकार का होता है—दृष्ट, अदृष्ट और दृष्टादृष्ट। जैसे आपने मन लगाकर जी-जान से सेवा की तो पिता ने आपके नाम वसीयत कर दी। यह दृष्ट फल है। उसका अदृष्ट एवं दृष्टादृष्ट फल भी होता है, जो संचित में शामिल हो जाते हैं। अति उग्र पाप-पुण्य का फल शीघ्र मिलता है। अति उग्र सकाम जप, तप, अनुष्ठानादि का फल इसी जीवन में प्राप्त होता है—

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिर्पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः।
अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते।।

तीन वर्ष, तीन महीने, तीन पक्ष या तीन दिन में ही अत्यन्त उग्र पाप या पुण्यों का फल इसी जीवन में जीव प्राप्त कर लेता है।

प्रारब्ध और पुरुषार्थ—जीव अनन्तपथ का यात्री है। जीव अनादिकाल से चला आ रहा है। असंख्य बार उसने मनुष्य योनि प्राप्त की। एकमात्र मनुष्य योनि में कर्म करने की स्वतंत्रता है और जब-जब मनुष्य कर्म करता है तो उसका फल उत्पन्न होता है। वह फल संचित होता-होता अमाप ढेरी बना हुआ है। इस संचित ढेरी में से कुछ कर्म को लेकर यह मनुष्य शरीर को प्राप्त होता है। इसको प्रारब्धकर्म कहते हैं। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार तक प्रारब्धकर्म अपना कार्य करता रहता है। प्रारब्ध मनुष्य को माता-पिता, परिवार आदि देता है। एक परिस्थिति देता है और अन्तःकरण में उस परिस्थिति से जुड़ने के लिए एक वृत्ति को उत्पन्न करता है और उसके पश्चात् मनुष्य को सुख व दुःख की अनुभूति होती है। उस सुख-दुःख की अनुभूति को हम कैसे स्वीकारते हैं। यह हमारे विवेक व पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। ताश के पत्ते प्रारब्ध के आधार पर मिलते हैं। प्राप्त पत्ते से अच्छा-बुरा खेलना हमारे पुरुषार्थ पर निर्भर है। अच्छे पत्ते प्राप्त कर बुरा खेलकर हम हार भी सकते हैं। बुरे पत्ते प्राप्त कर अच्छा खेलकर जीत सकते हैं। फिर मनुष्य की योनि चूंकि कर्म-स्वातंत्र्य की योनि है इसलिए मनुष्य नूतन कर्म करता है। जन्म से होश संभालने तक प्रारब्ध प्रधान होता है। फिर कर्म प्रधान होता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ के लिए कर्म करता है। वृद्धावस्था में शरीर के असमर्थ हो जाने पर प्रारब्ध प्रधान हो जाता है। प्रारब्धानुसार सुख-दुःख भोगता है। प्रौढ़ावस्था से कामनाएं पुनः छिपने लगती हैं। बीज बनने लगती हैं। युवावस्था तक सभी कामनाएं प्रकट हो जाती है और पुरुषार्थ के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय होता है। प्रौढ़ावस्था से कर्म की शक्ति क्षीण होने लगती है।

प्रारब्ध का प्रभाव बाह्य क्षेत्र (अर्थ और काम) में ज्यादा होता है। अन्त:करण के क्षेत्र में प्रारब्ध का प्रभाव कम होता है। इसलिए अन्त:करण के क्षेत्र में (धर्म और मोक्ष के क्षेत्र में) पुरुषार्थ का विशेष प्रयोग करना मनुष्य का कर्तव्य है। मनुष्य को अधिक पुरुषार्थ का प्रयोग आन्तरिक चेतना के उत्थान में, दिव्य गुणों की प्राप्ति और भगवद् भजन में करना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि अर्थ और काम के क्षेत्र में पुरुषार्थ का प्रयोग नहीं करें। भारतीय संस्कृति जन्म से ही पांच ऋणों की बात करती है—देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण, मनुष्य ऋण और भूत ऋण। इन पांचों ऋणों को उतारे बिना चित्त शुद्ध नहीं होगा। षड्विकार क्षीण नहीं होंगे, चित्त में दैवी सम्पत्ति प्रकट नहीं होगी। बुद्धि में परमात्म प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न नहीं होगी। मनुष्य योनि मनुष्य को इसलिए प्राप्त हुई है कि हम इसी जीवन में 'ईश्वर' को प्राप्त कर मुक्त हो जायें। इसके लिए कामनापूर्ति को गौण और कर्तव्य भावना को मुख्य रखने से हम स्वतः क्रमशः ईश्वरोन्मुखी होते जाएंगे। हमारा आचरण इसके विपरीत न जाये। ऐसा होने से हम मनुष्य जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य (प्रभु प्राप्ति) से च्युत हो जाएंगे। और, दुर्भाग्य से आज ऐसा ही कुछ हो रहा है।

समष्टि प्रारब्ध और व्यष्टि प्रारब्ध—जो सुख-दु:ख समष्टि रूप से प्राप्त होता है उसे समष्टि प्रारब्ध कहते हैं। जैसे—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, सुनामी की लहरें, प्राकृतिक प्रकोप, बाह्य शत्रुओं का देश पर आक्रमण आदि से जो दु:ख, कष्ट, गुलामी की स्थिति प्राप्त होती है। सम्यक् वृष्टि, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में देश की उन्नति से जो सारे देश को सुख-सम्पन्नता एवं सम्मान इसी जीवन में प्राप्त होता है। यह सब समष्टि प्रारब्ध कहलाता है। देश-समाज के प्रति हम सब सम्यक् रूप से कर्तव्य का पालन नहीं करेंगे तो देश अराजकता, पराधीनता की ओर जाएगा और उसका परिणाम हमें सामूहिक रूप से भोगना पड़ेगा। व्यष्टि रूप से जो हमको सुख-दु:ख एवं उसके अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त होती हैं उसे हम व्यष्टि प्रारब्ध कहते हैं। यह सब व्यष्टि कर्म का परिणाम है।

स्वेच्छा प्रारब्ध, परेच्छा प्रारब्ध—जब हम स्वयं संकल्पपूर्वक सुख-दु:ख, पद, प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करते हैं और उसके परिणामस्वरूप प्राप्त सुख-दु:ख, पद, प्रतिष्ठा को सहर्ष स्वीकार करते हैं तो उसे स्वेच्छा प्रारब्ध कहते हैं। और, जब बिना स्वयं की कामना के सुख-दु:ख, पद, प्रतिष्ठा को अन्यों के आग्रह के वशीभूत होकर हमें स्वीकारना पड़ता है उसे परेच्छा प्रारब्ध कहते हैं।

कर्मफल का नियामक ईश्वर—चार्वाक को छोड़कर भारतीय दर्शन की सभी धाराएं कर्म के सिद्धान्त को उचित प्रतिष्ठा देती है। कर्म के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा के लिए कर्मफलदाता ईश्वर को मानना आवश्यक है। जो व्यक्ति सदा

ईश्वर को हाजिर-नाजिर मानता है। जो यह अटल विश्वास रखता है कि प्रभु सर्वसाक्षी, सर्वसमर्थ एवं सर्वान्तर्यामी है। वह पाप या कुकर्म से बचा रहता है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

राम झरोखे बैठ के, सबका मुजरा लेत।
जैसी जाकी भावना, वैसा ही फल देत।।

अर्थात् मानो कि परमेश्वर इन्द्रियरूपी झरोखे में ही बैठा हुआ है और अन्दर की इन्द्रिय अन्त:करण में ही बैठा हुआ सब खेल-तमाशा देख रहा है और उसको उसकी भावना के अनुसार फल दे रहा है।

विश्वव्यापी न्याय के लिए आवश्यक है सृष्टि में नैतिक नियम की प्रतिष्ठा और नैतिक नियम के नियामक ऐसे परम पुरुष अथवा परमशक्ति की अनिवार्यता जो कर्म के मूल उत्स को भी जाने। जहां कहीं छिपकर कर्म किया जाय वहां पहले से ही मौजूद हो। और, जहां कहीं भाग कर जाय वहां भी मौजूद हो। और, वह इतना शक्तिशाली हो कि कोई व्यक्ति उसके अनुशासन का उल्लंघन करने एवं कर्म के अच्छे-बुरे फल को न भोगने की धृष्टता न दिखा सके। अत: कर्म सिद्धान्त के विश्वव्यापी नैतिक नियम के नियामक के लिए और विश्वव्यापी न्याय की तुला को स्थिर रखने के लिए अन्तर्यामी, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान सत्ता आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

जर्मनी के दार्शनिक कांट ने भी बहुत विचारमंथन करने के बाद निष्कर्ष निकाला कि नैतिकता के लिए ईश्वर इतना अनिवार्य है कि यदि ईश्वर न हो तो भी हमें ईश्वर की सत्ता में विश्वास करना ही पड़ेगा। क्योंकि इसके बिना नैतिकता टिक नहीं सकती।

भारत में चार्वाक दर्शन में ईश्वर की सत्ता का स्थान नहीं है, तो वहां कर्म के सिद्धान्त को भी स्थान नहीं है।

बौद्ध दर्शन ईश्वर की सत्ता के विषय में मौन है। गांधी, राधाकृष्णन् आदि बुद्ध को ईश्वर विश्वासी ही मानते हैं। कोटि-कोटि हिन्दू उन्हें ईश्वर का अवतार ही मानते हैं। किन्तु कुछ बौद्ध दार्शनिकों ने उनके मौन का विपरीत अर्थ लगाकर उन्हें निरीश्वरवादी सिद्ध करने की चेष्टा की। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि इतना महान् नैतिक आन्दोलन अनैतिकता की गर्त में गिरकर गलने-सड़ने लगा। बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के मठों में खुलकर व्यभिचार चलने लगा। अंगदेश (मुंगेर, भागलपुर) के बौद्ध सिद्धों कणहपा-सिरहपा आदि ने बौद्ध दर्शन में अपने धर्मग्रंथ की वाणियों में पंचमकार—मद्य, मांस, मीन, मुद्रा, मैथुन—की प्रशंसा लिखनी प्रारंभ कर दी तथा इस अति सीमा तक लिखने लगे कि डोमनी या रजकी के साथ

सम्भोग करने पर तुरत निर्वाणपद की प्राप्ति हो जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में ऐसे भ्रष्ट बौद्ध सिद्धों की वाणियों को उद्धृत किया है। इससे पता चलता है कि बिना दृढ़ ईश्वर विश्वास के कर्म का सिद्धान्त भी कैसे सर्वनाश को प्राप्त हो जाता है।

जैन दर्शन साधना के आदर्श के रूप में ईश्वर को स्वीकारता है किन्तु सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानता है और न कर्मफलप्रदाता, नैतिकता के नियामक ईश्वर को ही। जैन दर्शन अहिंसा, जीवदया का बड़ा सूक्ष्म विवेचन तथा कठोर पालन करता है। किन्तु उनकी दार्शनिक मान्यता यह है कि कर्मफल अपने आप प्राकृतिक सिद्धान्त के रूप में मिलता है, उसके लिए किसी ईश्वर को मानने की आवश्यकता नहीं। आग में हाथ डालने से जलेगा ही। ईश्वर चाहे या न चाहे। विष खाने पर मृत्यु होती है। ईश्वर की इच्छा-अनिच्छा इसमें कोई बाधा नहीं डालती। पर शुद्ध दार्शनिक आधार पर जैन दर्शन नैतिक नियम की रक्षा नहीं कर सकता है।

शंकराचार्यजी का प्रश्न है कि यदि देवदत्त ने सोमदत्त की हत्या कर दी तो उस हत्या का, कर्मफल का विधान कौन करेगा? मृतक तो गवाही दे नहीं सकता कि हत्या किसने की। खून भी गवाही नहीं दे सकता और छुरा भी साक्षी नहीं दे सकता। क्योंकि वह जड़ है। हत्यारा भाग जाता है और पकड़े जाने पर भी अपने को दोषी नहीं मानता। हत्या कर्म भी जड़ है। न वह हत्यारे को पहचानता है, न हत्या के पात्र को न शस्त्र को। अब कौन निर्णय करे कि दोषी कौन है। हत्यारा चेतन है किन्तु बचने के लिए अपने को हत्यारा घोषित नहीं करता। यदि कर्मफल का निर्णय उसी पर छोड़ दिया जाये तो कोई भी हत्यारा अपने आपको फांसी लगवाना नहीं चाहेगा। इस तरह कर्म के दोषी का निर्णय और कर्मफल का निर्णय कर्म भी नहीं करता, उपादान (यंत्र) भी नहीं करता, सम्प्रदान भी नहीं कर सकता। केवल कर्ता कर सकता है यदि वह निष्पक्ष हो। कर्म, करण, क्रिया आदि सब जड़ हैं। कर्ता चेतन है पर निष्पक्ष कर्ता का मिलना ही दुष्कर है। अब मान लें सोमदत्त ने सौ व्यक्तियों की हत्या करके स्वयं की हत्या कर ली। उसे तो दुनिया का कोई विधान दण्ड नहीं दे सकता। इसलिए कर्म सिद्धान्त की प्रतिष्ठा रहनी है तो कर्म का नियामक निष्पक्ष, न्यायकर्ता, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान सत्ता होनी चाहिये।

जो जैन बंधु व्यक्तिगत रूप में कुछ नैतिक आचरण का पालन करते रहते हैं। वे धीरे-धीरे सनातन हिन्दू धर्म की इस मान्यता को मानने लगते हैं कि भगवान् सब कुछ देखता है और सब कर्मों का फल देता है। वे भगवान् महावीर को ही भगवान् (ईश्वर) मानकर अपना काम निकाल लेते हैं। जो जैन बंधु नैतिकता का कठोरता से पालन करने का इच्छुक नहीं है उन्हें तो नैतिकता

के नियामक ईश्वर के बिना अनैतिक कर्म का खुला मार्ग मिल जाता है। इसलिए समाज में प्रचलित धारणा है कि जैन लोग छोटे से छोटे जीवों को कष्ट न देने का आडम्बर रचते हैं किन्तु निर्धनों का रक्त शोषण कर जीवित मानवों को खा जाते हैं। जैन-धनपतियों के निर्धनों के शोषण और बड़े व्यापक आधार पर भ्रष्टाचार के अंग प्रकाश में आये हैं। निष्कर्ष यह है कि निरीश्वरवादी की नैतिकता अधिक देर तक टिक नहीं सकती।

कर्म-अकर्म और विकर्म

शास्त्रसम्मत धर्मयुक्त कर्तव्य कर्म को ही कर्म कहा गया है जो हमें अभ्युदय और निःश्रेयस की ओर ले जाता है। विकर्म का अर्थ शास्त्रनिषिद्ध अधर्मयुक्त कर्म से है जो हमें मनुष्योचित लक्ष्य से च्युत कर पतन की ओर, अधोगति की ओर ले जाता है। अकर्म वह कर्म है जिसमें कर्तापन का अभाव हो जाता है। इसमें ब्रह्मज्ञानियों द्वारा ईश्वर की प्रेरणा से कर्म किये जाते हैं। जिसमें व्यक्तिगत अहंकार का लोप हो जाता है और व्यक्ति विश्व चेतना से जुड़ जाता है। जैसे—रामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि आदि द्वारा किये गये कर्म।

सृष्टि कर्ममयी है

ब्रह्मसूत्र कहता है—महाप्रलय के पश्चात् जीवों के कर्मानुसार भगवान् सृष्टि करते हैं। पूर्वकल्प के जीवों के कर्म पड़े हुए थे, उनकी सिद्धि के लिए भगवान् सृष्टि की रचना करते हैं। आज जो यम, वरुण, कुबेर, इन्द्र, प्रजापति के पद पर प्रतिष्ठित हैं वह पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों के आधार पर बने हैं, तो सृष्टि का आधार मनुष्यकृत कर्म है। कर्म के आधार पर सृष्टि टिकी रहती है। बिना कर्म के शरीर और संसार का निर्वाह नहीं हो सकता। अतः कर्म अनिवार्य है। पर कर्म मनुष्य को चार प्रकार से बांध देता है। कर्म कर्ता को रंग देता है। साधुकर्म हमें साधु बना देता है और दुष्ट कर्म हमें दुष्ट, असुर, पापाचारी बना देता है। इसके साथ-साथ वह जीवात्मा को कर्मासक्ति, फलासक्ति और अहम्कृति में बांध देता है।

इससे जन्म-मरण का चक्र चल पड़ता है। जन्म के गर्भ से कर्म, और कर्म के गर्भ से जन्म निकल पड़ता है। इस प्रकार जन्म-मृत्यु का चक्रव्यूह अनन्त-काल तक चलता रहता है। इससे मुक्त होने के लिए कर्म को निष्काम बनाना आवश्यक है। क्योंकि कर्म ही मनुष्य को बांधता है और वही मनुष्य के मन-बुद्धि (चित्त) को धोता है, मुक्त करता है। निष्काम कर्म मनुष्य के चित्त को शुद्ध करता है। इसके लिए प्रथम में विकर्म का, शास्त्र विरुद्ध कर्म का त्याग आवश्यक है। फिर शास्त्रसम्मत कर्म को कर्तव्य की भावना से, निष्काम भाव से करना आवश्यक है।

निष्काम कर्मयोग की चतुःसूत्री—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। 2/47, गीता

इसमें निष्काम कर्मयोग की चतुःसूत्री दी गई है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते—हे मानव! कर्म करने में तेरा अधिकार है। कर्म करना मनुष्य का स्वभाव है अतः वही उसका अधिकार भी है। प्रकाश करना सूर्य का धर्म है अतः वही उसका कर्म एवं अधिकार भी है। मानव कर्म करने में स्वाधीन है।

मा फलेषु कदाचन—कर्मफल पर तेरा अधिकार नहीं है।

(क) परीक्षार्थी स्वयं परीक्षक बन जाये तो मूल्यांकन में न्याय कभी नहीं होगा। कर्मफल नियंता परमेश्वर है।

(ख) सूर्य प्रकाश दूसरों के लिए देता है। नदियां जल तथा वृक्ष फल दूसरों के लिए देते हैं। उनका कर्मफल पर अधिकार नहीं। शरीर के अन्दर भी आंख शरीर की भलाई के लिए देखती है। कान शरीर की भलाई के लिए सुनते हैं केवल स्वयं के लिए नहीं। यदि पेट सारा अन्नरस अपने लिए रख ले और उसका रस पूरे शरीर को न भेजे तो बिना पोषण के शरीर मरने लगेगा। अतः मानव का कर्मफल पर अधिकार नहीं। यदि पेट अन्न को मात्र अपने लिए रखना चाहे तो अन्न विष बन जायेगा। यदि वृक्ष फल को अपने लिये ही रखना चाहे तो फलों में कीड़े पड़ जायेंगे। यदि मनुष्य कर्म का फल मात्र अपने स्वार्थ के लिए रखना चाहे तो वह कर्मफल ही उसके लिए फांसी बन जायेगा। जिससे उसे 84 लाख योनियों में भटकना पड़ेगा।

मा कर्मफल हेतुर्भू—फल की वासना से कर्म करने वाला मत बन। फल के लोभ में किया हुआ कर्म स्वार्थ कर्म है, यज्ञार्थ कर्म नहीं। जब फल पर अपना अधिकार ही नहीं तो उसकी अभिलाषा करना पागलपन है।

(क) परीक्षार्थी (उत्तीर्ण होने की आशा से) < सफलता में (प्रसन्न) / असफलता में (आत्महत्या)

(ख) परीक्षार्थी (कर्तव्य भाव से परीक्षा) < सफलता में (गंभीर) / असफलता में (पुनः कर्म में लगना)

फल की तुला पर कर्तव्य को कभी नहीं तौलना चाहिये। कर्तव्यपालन कर्तव्य के भाव से ही होना चाहिये।

मा ते सङ्गोस्त्वकर्मणि—अकर्म में भी तू संग मत रख। निकम्मापन जीवन में पतन का कारण है। अग्नि अपने जलाने के स्वभाव को ही छोड़ दे तो वह अपने धर्म से च्युत हो जायेगी। तो उसे अग्नि कौन कहेगा?

जो कर्मफल को त्यागता है वह ऊपर उठता है पर जो कर्म को त्यागता है वह नीचे गिरता है। वास्तव में कर्म का त्याग होता नहीं। कर्म का मूल कारण वासना है। वासना जब तक है तब तक कर्म त्याग नहीं हो सकता है। भले ही हम बाह्य रूप से कर्म का परित्याग कर दें पर हमारी वासना का नाश नहीं होने के कारण हम अपने मन में ही कर्मों, विषयों का चिन्तन करने लग जाते हैं। बाहर से तो हम कर्म नहीं कर रहे हैं पर अन्दर से कर्म चल रहा है। इसी को गीता में मिथ्याचारी कहा गया है—

इसमें निम्न हानियां है

1. कर्म से जो कर्तव्य कर्म करते हैं उससे च्युत हो जाते हैं।

2. कर्म से जो समाजसेवा होती है। वह रुक जाती है।

3. भीतर में कर्मों का चिंतन करते रहने के कारण चित्त मलिन का मलिन ही रह जाता है। वरन् और अधिक मलिन हो जाता है।

4. कर्म से हमारी वासनाओं की तृप्ति होती है वह रुक जाती है। कुंठित हो जाती है। वासना समाप्त नहीं होने के कारण वे गलत-अश्लील रूप में प्रकट होती हैं जिसकी पूर्ति लोग छिप-छिप कर करते हैं। अतः गीता इस प्रकार के कर्म त्याग की कठोर निंदा करती है।

अतः हमारी अकर्म में रुचि न हो। कर्तव्य कर्म अवश्य करें। कर्म निष्फल न हो किन्तु कर्म निष्काम अवश्य हो। यदि कर्म निष्फल होगा तो सारा श्रम व्यर्थ चला जायेगा। अतः कर्म का फल अवश्य निकलना चाहिये। समाज के लिए कल्याणकारी अवश्य होना चाहिये पर हमें उस फल की रत्ती भर इच्छा न हो। उदाहरणार्थ—पानी का बिलोना निष्फल है। यह सारे परिश्रम को बेकार नष्ट करना है। यदि पानी बिलोने वाला ये कहे कि मेरे परिश्रम का कोई फल नहीं तो चिन्ता नहीं क्योंकि भगवान् ने कहा है फल की फिक्र न करें तो उसके कथन को पागलपन कहा जायेगा। जो परिश्रम न करे वह आलसी है, जो परिश्रम को वृथा नष्ट करे वह मूर्ख। जो परिश्रम का दाम पहले चुकाये वह दलाल। जो परिश्रम के बाद पारिश्रमिक मांगे तो वह व्यवसायी है और जो परिश्रम के फल को भगवान् के चरणों में समर्पित कर दे वह निष्काम कर्मयोगी है।

कर्मसंन्यास—कर्मसंन्यास का अर्थ कर्म से संन्यास नहीं। वरन् फलासक्ति, कर्मासक्ति, अहंभाव यानी कर्तापन के भाव के परित्याग से है। कर्म मनुष्य को न लिप्त करता है और न बांधता है। कर्म में निहित फल की वासना, कर्म के प्रति आसक्ति एवं कर्तापन का भाव बांधता है। कर्मसंन्यास में इन तीनों का नाश हो जाता है।

निष्काम कर्म में फलासक्ति शिथिल हो जाती है पर कर्मासक्ति एवं अहम्कृति (कर्तापन का भाव) बनी रहती है। पर निष्काम कर्मयोग के द्वारा कर्मों के फल एवं फूल भगवान् के चरणों में चढ़ाते-चढ़ाते धीरे-धीरे चित्त शुद्ध होने लगता है। कर्तापन के अहंकार का मैल धुल जाता है और व्यक्ति को यह अनुभूति होने लगती है कि कर्मों का वास्तविक कर्ता मैं हूं ही नहीं। प्रभु के दिये तन, मन, धन से, प्रभु की ही दी हुई ज्ञानेन्द्रियों से, प्रभु की दी हुई कर्मेन्द्रियों से, प्रभु के दिए हुए मन व बुद्धि से, चित्त व अहम् से, प्रभु के रचे हुए जगत् में प्रभु के रचे हुए जीव के प्रति, प्रभु की प्रेरणानुसार, प्रभु के दिये हुए साधनों से जो कर्म हो रहा है वह समस्त कर्म प्रभु का ही है। उसमें मेरा कुछ भी नहीं है। अतः प्रभु ही प्रभु का कर्म कर रहे हैं। तत्त्वतः प्रभु अकर्ता ही हैं। प्रभु को कर्ता कहें, अकर्ता कहें बात एक ही है। क्योंकि वे समस्त कर्मों के स्वामी होकर भी कर्मों से अलिप्त हैं। जो कर्ता बनेगा उसे भोक्ता भी बनना पड़ेगा। तत्त्वतः प्रभु न कर्ता हैं और न भोक्ता हैं। उनकी आज्ञा अनुसार प्रकृति ही सब लीला कर्म कर रही है। वे उसके साक्षी, द्रष्टामात्र हैं।

इस प्रकार कर्मसंन्यास में कर्तापन का अहंकार भी गल जाता है। चित्त शुद्ध हो जाता है। शुद्ध चित्त में ब्रह्मज्ञान प्रकाशित हो जाता है।

इस प्रकार कर्मयोग की साधना के परिणाम निम्नलिखित हैं—

(i) कर्म की रंगत चढ़ी नहीं
(ii) कर्मासक्ति से बचाव
(iii) कर्मफल की फांसी से बचाव
(iv) कर्तापन के अहंकार से बचाव
(v) कर्म में प्रभु की विशेष कृपा, विशेष शक्ति का प्रवेश हो गया।
(vi) कर्म उत्तम और चमत्कारी हो गया।
(vii) असम्भव को सम्भव कर दिया।
(viii) विश्व का भरपूर कल्याण हुआ और अपना मोक्ष (प्रभु-प्राप्ति) सिद्ध हो गया।

इस प्रकार कर्मयोग कर्म करने की ऐसी कला है जिसमें कर्म अच्छे से अच्छा, भरपूर शक्ति सम्पन्न और परम कल्याणकारी होता है और कर्मबंधन की एक भी रज्जु उसे बांध न सकती। और जीवन के दोनों उद्देश्य—जग का भला और अपना मोक्ष-सिद्ध हो जाते हैं। यही कर्मयोग है। कर्म का रहस्य है। कर्म-सिद्धान्त है।

कर्मयोग

एक प्रिंसिपल

कर्मयोग के परिणामस्वरूप

Pessimistic निराश

कर्म से दूर

पलायनवादी

कर्म करो फल की आशा मत करो। तब निराशा के अलावा है ही क्या? फल की प्रेरणा से ही कर्म होते हैं।

घुड़दौड़ में Gold Maddle जीतने के लिए लोग सालभर से अभ्यास करते हैं। फल बिना incentive, बिना Salary के सब प्रोफेसर टा-टा करके चले जाएंगे।

उत्तर—मजदूर को मजदूरी मिलनी ही चाहिए नहीं तो निर्वाह भी नहीं होगा और अत्याचार भी होगा। अतः निर्वाह हो और अत्याचार से बचने के लिए मजदूर को मजदूरी मिलनी चाहिए। पर ऐसे लोग मजे से दूर रहते हैं इसलिए मजदूर कहलाते हैं। इसमें जीवन का मजा नहीं है। कोई कलम का, कोई वाणी का, कोई शास्त्रों को ढोने वाला आदि-आदि।

मजदूर है वह जीवन के वास्तविक मजे से दूर है।

तब उस प्रोफेसर ने कहा—कि मजदूर ही अच्छे हैं। हम मजदूर ही बने रहेंगे।

उत्तर—पुनः आपका बच्चा नहर में डूब गया। चार आदमी आते हैं—

A. परम आलसी मार्ग में नशे में चूर हैं। लोग कहते हैं बच्चा डूब रहा है। उसे निकालो—कोई उत्तर नहीं—बच्चों को बचाने पर भरपूर इनाम है तो वह कहता है कृष्ण ने कहा है कर्म तो करो पर फल की आशा मत करो—पर वास्तव में उसमें फल की लालसा नहीं, ऐसी बात नहीं पर वह आलसी है। कर्म करना नहीं चाहता है। यह व्यक्ति कर्म नहीं करता है। ऊपर-ऊपर से कहता है फल की इच्छा नहीं, फलाशा नहीं, ऐसा व्यक्ति तमोगुणी।

B. पहले सौदा करता है मुझे क्या फल मिलेगा। बिना फल के कर्म भी नहीं करता है। फल का Promise होने पर कर्म। ऐसा व्यक्ति दलाल है। रजोगुण तमोन्मुखी है।

C. कपड़े उतारे, छलांग लगायी, बच्चे को निकाला, फिर कर्म के तुरन्त बाद फल मांगता है। फल नहीं मिलने पर बच्चे को पुनः नहर में फेंक देता है। ऐसा व्यक्ति कठोर व्यापारी है।

D. कपड़े उतारे, छलांग लगायी, बीच भंवर से बच्चे को वापस लाया। बच्चे का पानी निकाला। बच्चे को होश में लाया। बच्चे को स्वस्थ किया और फिर अपनी साइकिल पर चढ़ा और चलता बना। इसने फल की चर्चा न पहले की, न बाद में चर्चा की। कर्म आया तो तुरन्त किया और अपने रास्ते लग गया।

तब प्रिंसिपल से पूछा—चारों आदमियों में से तुम किसको मांगोगे। तब उत्तर मिला D को मांगूंगा। इसी तरह निष्काम कर्मयोगी को दुनिया का हर कोई व्यक्ति चाहता है।

माँ की सेवा कर्तव्य भावना से न कि फल की आशा से। या माँ बूढ़ी हो गई है इसलिए नहीं वरन् माँ की सेवा शुद्ध कर्तव्य भाव से। इसी प्रकार भूखे को अन्न, प्यासे को जल, वस्त्रहीनों को वस्त्र देना शुद्ध कर्तव्य भाव से। कर्तव्य-कर्तव्य के लिए।

फलाशा की कामना करना तुच्छता है, कमीनापन है, कृपणता है।

(1) कर्म का अधिकार है—उदाहरण-परीक्षा में सादी कापी मिली। 3 घंटे के लिए छात्र को अधिकार है कि वह उसमें लिखे या खाली छोड़ दे। शिक्षक की प्रशंसा लिखे या गाली दे। उस पर थूके या उपयोग करे चाहे उसका जिस तरह उपयोग करे। 3 घंटे के लिए कर्म का अधिकार है।

(2) मा फलेषु कदाचन्—फल पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। इसमें B अधिकारी नहीं है। C कर्म के बाद फल का सौदा करने वाला। कर्म अच्छा करें या बुरा करें हमारी मर्जी पर फल का विधान हमारे हाथ में नहीं है। नहीं तो सभी कोई अपने आपको First class first कर दे। अतः फल का विधान हमेशा दूसरा ही करता है।

(3) अतः कर्मफल की ओर हमारी प्रवृत्ति न हो।

(4) और न कर्म न करने की ओर ही प्रवृत्ति हो। क्योंकि चलो फल नहीं चाहना है तो कर्म ही मत करो। जिससे फल के झंझट से बच जाएंगे। फल का सवाल ही नहीं उठेगा। अतः भगवान् कहते हैं—अकर्म की ओर भी हमारी प्रवृत्ति न हो।

इस सबका अधिकारी D है। जिसको कर्मयोगी बनना है। तब कर्म में फल मिश्रित नहीं होने देना चाहिए।

गीता तो हमारे समक्ष आदर्श व्यक्ति, महान् व्यक्ति बनने के लिए एक आदर्श रखती है। अतः गीता हमारे लिए नीचे नहीं आएगी। गीता के लिए हमें ऊँचा उठना होगा।

हम एकाएक गीता के महान् आदर्श तक नहीं पहुँच सकते हैं। इसके लिए गीता ने इस आदर्श तक पहुँचने के लिए सीढ़ी बनाई है—

(1) सकाम कर्म करो पर अच्छे कर्म करो, बुरे नहीं।

फिर कर्मफल-त्याग का अभ्यास।

फिर कर्म संग त्याग का अभ्यास।

और फिर कर्तापन का अहंकार त्याग दो। तब सच्चे अर्थ में पूर्ण सिद्ध कर्मयोगी।

यज्ञ तत्त्व से ही सृष्टि अभी तक बची हुई है। नहीं तो सृष्टि अभी तक ध्वस्त हो जाती।

तिलक-सुभाष-मालवीयजी—ऐसे निष्काम कर्मयोगी नहीं होते तो सृष्टि कब की समाप्त हो गई होती। इन महापुरुषों के पास भौतिक सुख-सम्पदा का अतुल भण्डार सामने पड़ा था। पर इन्होंने उसकी ओर दृष्टिपात तक नहीं किया।

कर्म का रहस्य वही है जो सारे जीवन और जगत् का रहस्य है। यह श्रीमद् गीता के वक्ता श्रीभगवान् के संदेश का सार-मर्म कहा जा सकता है। जगत् प्रकृति का केवल कोई यंत्र या नियम चक्र नहीं है जिसमें जीव क्षणभर के लिए या युग-युग जीने-मरने के लिए फंसा हो, यह है परमात्मा की निरन्तर अभिव्यक्ति।

—ऋषि अरविन्द

जहँ राम तहँ काम नहिं

एक ओर तो कहा जाता है जहां राम वहां काम नहीं और जहां काम वहां राम नहीं एक साथ दो स्वामी की सेवा यानी ईश्वर और जगत् दोनों की सेवा साथ-साथ नहीं कर सकते। दूसरी ओर यह कहा जाता है कि संसार में रहकर निष्काम भाव से विश्व की सेवा ही भगवान् की पूजा है। वास्तविक संन्यासी वही है जो संसार में रहते हुए संसार से निस्संग रहता है। जैसे कमल का फूल। यहां दोनों बातें देखने में परस्पर विरुद्ध-सी लगती हैं। पर वास्तव में विरोधी नहीं हैं। देश, काल, पात्र, परिस्थिति के अनुसार यह भेद प्रतीत होता है। जैसे भगवान् अर्जुन को उपदेश देते हैं और Stage by stage आगे बढ़ते जाते हैं। प्रथम में वे कहते हैं कर्म तुम छोड़ नहीं सकते। कर्म तुम्हें करना है। फिर दूसरी Stage में कहते हैं कर्म तुम्हें करना है। पर, कर्मफल पर तेरा अधिकार नहीं। फिर अगली Stage में थोड़ा और ऊपर उठते हैं तुम कर्ता हो, यह भ्रान्ति वास्तविक कर्ता गुण है फिर एक Stage आगे जाते हैं और सब कुछ कर्ता ईश्वर है तुम तो मात्र निमित्त हो।

ये बातें परस्पर विरुद्ध-सी लग सकती हैं। पर, विरुद्ध नहीं हैं। अधिकार-भेद के अनुसार ही उपदेश दिया जाता है। प्रथम में हमें सत्-असत् में भेद करना पड़ता है। भेद करके सत् को ग्रहण करना और असत् का त्याग करें। जब हम सत् में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, स्थिर हो जाते हैं। सत् की कुछ झलक या रस मिलने लगता है। उसका स्वाद मिल जाता है। तब यह विचारना चाहिए कि असत् की सत्ता किससे है? असत् के लिए आधार क्या है? क्या जैसा बाइबिल और कुरान में evil power या शैतान की कल्पना की गई है अशुभ के लिए अलग से। अगर असत् के लिए अलग से शैतान की कल्पना करते हैं तो विश्व में दो सत्तायें हो जाएगी और दोनों में संघर्ष हो सकता है। अतः दो सत्ताओं का विचार नहीं कर सकते हैं। अतः असत् भी अस्तित्ववान है ईश्वर के कारण। भले ही वह ईश्वर गलत स्थान पर होने के कारण अशुभ प्रतीत होता है। राम तो ईश्वर है पर रावण भी ईश्वर की सत्ता से ही सत्तावान है। किसी evil power की बदौलत नहीं। अतः दोनों जगह जब ईश्वर का वास है तब उससे घृणा कैसे कर सकते हैं। अतः वहां निस्संग भाव से रहना है। इसलिए हमारे यहां अशुभ के लिए अलग से शैतान

की कल्पना नहीं की गई है। सब कहीं ईश्वर का ही साम्राज्य है। इसलिए हमने मृत्यु को देव कहा। काम को कामदेव कहा। असुर, पापी, शैतान कहकर उसका बहिष्कार नहीं किया।

अतः प्रथम में सत् और असत् का विवेक कर असत् का परित्याग और सत् में प्रतिष्ठित होना और जब सत् में प्रतिष्ठित हो जाते हैं तब यह विचार करना है असत् की सत्ता किससे है। तब फिर असत् से घृणा नहीं करके उसमें निस्संग भाव से कमल के सदृश रहना है। किन्तु, यदि प्रथम में सत् और असत् का विवेक नहीं करेंगे तो हम कभी भी सत् में प्रतिष्ठित नहीं हो पाएंगे और असत् से निवृत्त नहीं हो पाएंगे। सदैव असत् के मायाजाल में बंधे हुए 84 लाख योनियों में भटकते रहेंगे।

रहीम ने तुलसीदासजी को लिखकर भेजा कि मैं राम और काम दो घोड़ों पर सवार हूं। दोनों मुझे विपरीत दिशा में खींच रहे हैं। रथ के दोनों घोड़ों के विपरीत दिशा में गमन करने से मैं पिसा जा रहा हूं। तब तुलसीदासजी ने लिखा कि हाथ रखो संसार के कार्य में मन राखो राम में। घोड़े दो हैं पर रथ एक है। अतः आपका रथ और शीघ्रता से राम के धाम पहुँचेगा।

ऐसी स्थिति में जब हम सत् में प्रतिष्ठित हैं पर लोक व्यवहार और समाज की मर्यादा की रक्षा हेतु असत् व्यवहार करते हैं। तब जबकि हमें सत् का चस्का (बड़ा रस परम रस) लग चुका है तब संसार हमें अपनी ओर नहीं खींच सकेगा। संसार में हमारा राग नहीं होगा। संसार का कटु रस हमें नहीं भाएगा। संसार का रस हमें अपने पथ से विचलित नहीं कर सकेगा। इससे दोनों उद्देश्य पूरे हो जाते हैं। अपना मोक्ष और जगत् का हित।

जीवन केवल जीने के लिए नहीं वरन् परमेश्वर के लिए है और मनुष्य का अन्तरात्मा उन्हीं परमेश्वर का सनातन अंश है। कर्म का प्रयोजन है आत्म-अनुसंधान, आत्म-पूर्णत्व और आत्मसिद्धि कोई तात्कालिक बाह्य फल नहीं है।

—ऋषि अरविन्द

गीता में यज्ञ तत्त्व

भारतीय संस्कृति का एक पावनतम प्रतीक यज्ञ तत्त्व है। इसकी महिमा और महत्ता से सारा भारतीय वाङ्मय गूंज रहा है। ऋग्वेद का प्रथम मंत्र यज्ञ की महिमा से ही श्रीगणेश करता है—

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्।।

अर्थात् मैं इस पावन अग्नि देवता (ज्योतिस्वरूप परमेश्वर) की स्तुति करता हूं, पुरोहित (मानव के हित को आगे बढ़ाने वाला) यज्ञ के देवता की, ऋत्विज (ऋतुओं के अनुरूप यजन करने वाले) की, होता (हवन करने वाले) की, रत्नधातमम् (रत्नज्योति से देदीप्यमान) यज्ञ भगवान् की स्तुति करता हूं।

वेद ने यज्ञ की महिमा में कहा है, **'यज्ञो ही विश्वस्य भूवनस्य नाभि'** अर्थात् यज्ञ तत्त्व सारे विश्व भुवन की नाभि (केन्द्र) है। जिस प्रकार नाभि ही जनन का केन्द्र है। जीवन भर प्राण धारण का मर्म स्थान है। उसी प्रकार सारे विश्व का जन्म स्थान पोषण और मर्म स्थान यज्ञ ही है। यज्ञ के बिना न सृष्टि का जन्म सम्भव है न पोषण। न जीवन धारण एवं रक्षण। विज्ञान में नाभि उस बिन्दु (Focus) को कहते हैं जिस पर बिल्लौरी शीशे की सारी किरण पुंजिभूत होकर केन्द्रित हो जाती है। अन्य किरणों में उतना तेज नहीं दिखाई देता जितना नाभि स्थान पर। इसलिए विश्व भुवन का सबसे तेजस्वी तत्त्व यज्ञ ही है।

वेद में कहा गया है कि परमेश्वर ने यज्ञ भाव से अपने आपको समर्पित करके ही अपनी आहुति देकर सृष्टि की रचना की। यज्ञाग्नि में जो सुगंधि डाली जाती है वह फैलकर सबको वितरित हो जाती है। सैकड़ों लोगों को एक मिर्च बांटना चाहें तो बड़ा कठिन कार्य होगा किन्तु मिर्च को अग्नि में डाल दें तो सैकड़ों लोग छींकने लगेंगे। इसी प्रकार घृत और सुगन्धि को बांटने से बहुत कम वितरण होगा। अग्नि में आहुति देने से वह सबको वितरित हो जाती है। इसी प्रकार ब्रह्म ने यज्ञ भाव से संकल्प किया **'एकोऽहम् बहु स्याम्'** और यह ब्रह्म अनन्तानंत जीवों में अपनी ज्योति वितरित कर विश्वरूप हो गया। विश्व की रचना की इसलिए यज्ञ ही सृष्टि

की योनि है। यही सृष्टि की नाभि है। श्रीगीता में इसी भाव को दर्शाते हुए भगवान् कहते हैं—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।। 3/10, गीता

प्रारम्भ में यज्ञ भाव के साथ सृष्टि रचते समय सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ने कहा इस यज्ञ तत्त्व से ही तुम फलो-फूलो, उन्नति करो। यह यज्ञ ही तुम्हारी सब कामनाओं को पूरा करने वाला है। सृष्टि में सर्वत्र यज्ञ ही चल रहा है। यदि यज्ञ तत्त्व निकाल दिया जाए तो सारी सृष्टि ध्वस्त हो जाए।

पंचभूतों में यज्ञ

पंचभूतों में यज्ञ—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश सभी एक महायज्ञ में सहयोगी हैं। संसार के सात अरब लोग, इससे 100 गुणा अधिक पशु-पक्षी और हजारों गुणा अधिक अन्य जीव-जीवाणु, कीट-कीटाणु प्रतिदिन श्वसन क्रिया से विषैली गैस छोड़ते हैं। यदि ये विषैली गैसें वायुमण्डल में ही रहे तो सारी मानव-जाति एक दिन में ही मर जाएगी। एक बंद कमरे के भीतर चार व्यक्तियों द्वारा रात्रि भर में छोड़ी हुई कार्बन डाइऑक्साइड एवं नाइट्रोजन गैस से इन चारों की दम घुट कर मृत्यु हो जाती है। शरीरों से निकलने वाली विषैली गैस के अतिरिक्त करोड़ों चूल्हों की गैस, लाखों मिलों और फैक्ट्रियों की विषैली गैस, गाड़ियों, मोटरों, ट्रकों की गैसों से जो वायुमण्डल दूषित होता है उसमें एक दिन भी जीना दूभर हो जाए। किन्तु सृष्टियज्ञ के कर्ता यज्ञ-भगवान् ने असंख्य-असंख्य जंगल के वृक्ष एवं पेड़-पौधे बनाए हैं जो प्राणियों के शरीर से छोड़ी हुई विषैली गैसों को पी जाते हैं और वायुमण्डल को शुद्ध करके शुद्ध ऑक्सीजन मानव-जाति को प्रतिदिन-प्रतिपल बिना मूल्य के दान करते रहते हैं। हम क्षण भर के लिए कल्पना करें कि सृष्टि के इस विराट् यज्ञ के बिना हमारा जीवन एक पल भर के लिए भी सम्भव नहीं होगा। इसी प्रकार मानव जीवन के लिए जल की व्यवस्था, खाने के लिए अन्न की व्यवस्था, ताप के लिए सूर्य की व्यवस्था, चलने-फिरने के लिए धरती-आकाश की व्यवस्था न हो तो जीवन असम्भव हो जाएगा। ये सब ईश्वर के महायज्ञ का ही चमत्कार है। सूर्य का ताप हमारे लिए आवश्यक भी है और उसकी अतिशय दाहक शक्ति हमें पल भर में जलाकर भस्म भी कर सकती है। इसलिए हमें जितनी मात्रा में सूर्य का ताप चाहिए सूर्य को उतनी ही दूरी पर रखने का विधान किसी विश्वकल्याणकारी यज्ञ शक्ति का ही चमत्कार है।

लगभग 9 करोड़ मील दूरी का सूर्य यदि दूर चला जाए तब भी सृष्टि का नाश हो जाए और अधिक निकट आ जाए तब भी सृष्टि जल जाए। भगवान् ने गीता में कहा है, 'मैं ही सूर्य बनकर अन्न, वनस्पतियों को पकाता हूं और चन्द्रमा

बनकर औषधियों में रस भरता हूं। यह विज्ञान से प्रमाणित तथ्य है। सूर्य का ताप एवं प्रकाश न मिलने पर पेड़-पौधे मुर्झा कर मर जाते हैं। सौर ऊर्जा हमारे जीवन के लिए अनिवार्य है। किन्तु उसे सीधे पचा सकना या सहन कर सकना मनुष्य के लिए असम्भव है। इसलिए हमारे कल्याण के लिए इस विराट् सृष्टि में (यज्ञ की) यह व्यवस्था की गई है कि पेड़-पौधे सूर्य के ताप से सौर ऊर्जा प्राप्त करें। उससे बढ़ें। उसी से फल और अन्न पके। पेड़-पौधे सौर ऊर्जा को ग्रहण कर क्लोरोफिल (हरियाली) में बदल देते हैं। जो मानव जीवन के लिए अनिवार्य है। इस प्रकार सूर्य हमें बाहर से ताप देता ही है। अन्न-फल और शाक-सब्जियों के रूप में भी हमें सौर ऊर्जा प्रदान करता है। जिससे हमारे शरीर की जठराग्नि बनी रहे और शरीर का तापमान साढ़े ९८ डिग्री बना रहे। सौर ऊर्जा से विकसित घास को खाकर गायें दूध देती हैं जो मानव के लिए पूर्ण भोजन है। घास की अलौकिक शक्ति पर नए-नए वैज्ञानिक प्रयोग सिद्ध कर रहे हैं कि इसमें एक महान् जीवनी शक्ति और असाध्य रोग को दूर करने की क्षमता है।

मानव अन्न, फल, शाक-सब्जियां खाकर जो अखाद्य मल-मूत्र त्याग करता है वह धरती को उपजाऊ बनाने के लिए खाद बन जाता है। और धरती जो कुछ पैदा करती है वह प्राणियों के लिए खाद्य बन जाता है। इस प्रकार सृष्टि में एक विराट् यज्ञ चल रहा है। पांचों तत्त्व विश्वकल्याण के लिए लगे हैं। धरती अपना अन्न स्वयं नहीं खाती, वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते, नदियां अपना जल स्वयं नहीं पीती, सूर्य अपना ताप एवं प्रकाश अपने पास ही सीमित नहीं रखता। अपने वरदान एवं फल सारे विश्व को बांटने में ही उनकी सार्थकता है—

वृक्ष न निज फल को चखे नदी न पीवे नीर।
परमारथ के कारणे संतन धरा शरीर।। (कबीर)

जीव सृष्टि में यज्ञ

सृष्टि में जितने जीव हैं वे सभी परस्पर एक-दूसरे के लिए उपयोगी हैं। कोई भी व्यर्थ या फालतू नहीं है। सभी सृष्टि के महायज्ञ में पूरक, सहायक एवं उपयोगी हैं। सांप-बिच्छू जैसे विषैले जीव भी वायुमण्डल के विष को पीकर वायु को शुद्ध करते हैं। गाय, बैल, घोड़ा, कुत्ता, चिड़िया, भेड़-बकरी सभी का अपना-अपना महत्त्व है। हम मानव समझते हैं कि पंचमहाभूत जड़ हैं और यज्ञ भावना केवल चेतन प्राणी में हो सकती है। छोटे जीवों में मानसिक विकास बहुत कम रहता है इसलिए उनमें यज्ञ भावना की समझ कहां से आ सकती है। किन्तु प्रभु की इस निराली सृष्टि में जड़-चेतन सभी के पीछे एक चेतन सत्ता सुप्त या गुप्त रूप में काम कर रही है। वही पत्थर में सोयी हुई है, पशुओं में स्वप्न ले रही है और मानव में जाग उठी है। पंच महाभूत प्रकृति के ही पांच तत्त्व हैं। प्रकृति बाहर से जड़ प्रतीत

होते हुए भी मूलतः परमेश्वर की रचना शक्ति है। वही दुर्गा-काली, सरस्वती, लक्ष्मी के रूप में पूजी जाती है। इसलिए वह मूल रूप में चेतन है और बहिरंग में जड़ प्रतीत होती है। छोटे जीवों में यज्ञ भावना प्राकृतिक प्रवृत्ति के रूप में है। मानव को अपने विवेक से यज्ञ भावना को चुनना पड़ता है। स्वार्थ और यज्ञार्थ में से वह किसे चुने इसके लिए वह स्वाधीन है। छोटे जीवों का यज्ञ भाव स्वाभाविक एवं प्राकृतिक है किन्तु मानव का यज्ञ भाव उसके स्वाधीन संकल्प से होने वाला कर्म है। इसलिए मानव का यज्ञ कर्म पुण्य और स्वार्थ कर्म पाप माना जाता है। पशु एवं अन्य छोटे जीव पाप-पुण्य से मुक्त हैं।

राष्ट्रयज्ञ

राष्ट्र में सभी नागरिक अपने समस्त कर्मों को सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए समर्पित करे तो उससे पूरे राष्ट्र का कल्याण सम्पादन होता है। यदि व्यक्ति अपने निर्वाह योग्य कमाई को अपने पास प्रयोगार्थ रखकर शेष राष्ट्र के नेता या उदार त्यागी राजा को समर्पित कर देता है तो उसे न संग्रह का झंझट करना पड़ता है न रक्षा की चिंता। न स्वार्थ का पाप लगता है और राजा द्वारा राष्ट्र के व्यापक कल्याण के लिए न्यायपूर्वक उसका वितरण एवं सदुपयोग भी हो जाता है। राजा या शासक को सूर्य या अग्नि के समान होना चाहिए जो अपने पास कुछ भी न रखकर सब कुछ दूसरों के व्यापक कल्याण के लिए समर्पित कर देता है। सूर्य धरती के नदी-नालों, तालाबों से थोड़ा-थोड़ा जल भाप रूप से ग्रहण करता रहता है जिससे किसी को न पता चले और न कष्ट हो। फिर समस्त जल को शुद्ध करके धरती पर ही बरसा देता है अपने पास कुछ नहीं रखता। एक आदर्श राज्य में (रामराज्य में) ऐसी ही स्थिति होती है। भगवान् राम कहते हैं—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुच्यतो नास्ति मे व्यथा।।

अर्थात् लोकजीवन के लिए अपने स्नेह को, दया को, सुख को, राजवैभव एवं प्राणवल्लभा जानकीजी को भी त्यागने में मुझे तनिक भी व्यथा नहीं है।

शरीर यज्ञ

शरीर में सिर को ब्राह्मण भाग, छाती और भुजाओं को क्षत्रिय भाग, पेट को वैश्य भाग और जंघाओं और पांवों को शूद्र भाग कहा गया है। किन्तु शरीर के सभी अंग यज्ञ भाव से पूरे शरीर के हित के लिए कार्य करते हैं। तभी शरीर स्वस्थ रहता है। यदि सिर सोचे कि मैं केवल सिर का हित ही विचार करूंगा, पांव में कांटा चुभने की चिन्ता नहीं करूंगा या पेट की पीड़ा से मेरा कोई सरोकार नहीं वह शरीर सिर समेत रोगी होकर अस्पताल में एड़ियां रगड़ने या श्मशान भूमि में

जलने के लिए पहुंच जाएगा। यदि भुजायें सिर की चोट, पेट की पीड़ा और पांव की कांटे से रक्षा के लिए तुरन्त अपने आपको समर्पित न करे तब भी रोग और मृत्यु को निमंत्रण होगा। पेट यह सोचे कि मेरा खाया हुआ अन्न, दूध आदि मेरे ही भण्डार में रहे और मैं उसका रस पूरे शरीर को नहीं बांटू तो पेट रोगी हो जाएगा और अपनी ही मृत्यु बुलाएगा। हमें डॉक्टर के पास जाकर मोटी फीस देकर कहना पड़ता है मेरा पेट रूप बनिया बेईमान हो गया है। सब कुछ अपने भण्डार में छिपाकर रखता है, दूसरे अंगों को नहीं बांटता है। डॉक्टर को तेज औषधि अथवा ऑपरेशन द्वारा उसके उदर भण्डार का चोरी से छिपाकर रखा हुआ सड़ता हुआ सब माल बाहर निकालना पड़ेगा। यदि पांव पूरे शरीर की सेवा के लिए प्रस्तुत न हो तो शरीर के रोगी या मृतक होने का दण्ड उन्हें भी भोगना पड़ेगा। इस प्रकार शरीर का प्रत्येक अंग पूरे शरीर के हित के लिए अपनी सेवाएं समर्पित करता रहता है। तभी शरीर का निर्वाह चलता है। इस प्रकार शरीर भी यज्ञ भाव पर ही टिका हुआ है।

पारिवारिक यज्ञ

परिवार में प्रत्येक सदस्य जब पूरे परिवार के हित के लिए अपनी सेवाएं समर्पित करता है तो परिवार का सुन्दर निर्वाह चलता है। यदि सभी सदस्य अपने-अपने स्वार्थ साधने में लग जाएं तो परिवार उजड़ जाएगा। स्वामी रामतीर्थ अमेरीका में यज्ञ तत्त्व की महत्ता समझा रहे थे तो एक अमेरीकन ने कहा कि आज के इस वैज्ञानिक और भौतिकवादी, अर्थपरायण युग में आपका (भारत का) यज्ञ सिद्धान्त नहीं चल सकता। स्वामीजी ने कहा, यह आज भी चल रहा है और उसी के वरदान से आप जीवित हो। आप सबके घर में एक यज्ञमूर्ति है जिसे आप पहचानते नहीं। वह आपकी माता है। वह कितना कष्ट झेलकर बच्चों का पालन पोषण करती है। परिवार के सब सदस्यों, अतिथियों को खिलाकर अन्त में बचे हुए को खाती है, नहीं तो भूख में ही समाधान मान लेती है। वह यज्ञ तत्त्व निष्काम कर्मयोग की जीवित प्रतिमा है। जो पूरे परिवार की इतनी सेवा करके भी कभी अहंकार नहीं जताती। एक बार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने अपनी माता से पूछा कि आपने मुझे जन्म देकर मेरे ऊपर जो उपकार किया है क्या मैं अपनी सेवा द्वारा उसका कुछ अंश चुका पाया हूं या नहीं? माता ने मुस्कराकर कुछ दिन बाद उत्तर देने का आश्वासन दिया। एक बार सर्दी की रात्रि को थके हुए, तनिक ज्वरग्रस्त ईश्वरचन्द्र विद्यासागर पर अर्द्धरात्रि के समय माता ने उठकर एक ठण्डे पानी का घड़ा उसके बिस्तर पर उड़ेल दिया। विद्यासागर माता के इस व्यवहार से क्रोधित होकर अपशब्द बोलने लगे। माता ने प्यार से उसके शरीर को पोंछते हुए उसको नए कपड़ पहनाये और साथ वाले कमरे में दूसरे बिस्तर पर सोने के लिए आग्रह

किया। माता ने समझाया कि आज तुम्हारे पास महल जैसा मकान है। दर्जनों कमरे हैं, दर्जनों बिस्तर। किन्तु एक समय था जब हमारे पास एक टूटी-फूटी फूस की झोंपड़ी थी एवं टूटी-फूटी चारपाई थी। रात को वर्षा आ जाने पर वर्षा का आधा पानी अंदर आ जाता था। अर्द्धरात्रि को तुम अचानक मल-मूत्र कर देते थे। फिर भी मैं सारी रात तक स्वयं को गीले भाग में और तुम्हारे मल में रहकर तुम्हें सूखे भाग में सुलाती थी। कहीं मेरे लाल को न्यूमोनिया न हो जाए। बस, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर हो गया। तुम साथ वाले कमरे में नये बिस्तर पर विश्राम करो। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी और उसने मां के चरणों में गिर कर क्षमायाचना की और कहा, हे मां! मैं सौ जन्मों में भी तेरा उपकार (ऋण) नहीं चुका सकता। सचमुच, जिस दिन माता स्वार्थी हो जाएगी उस दिन सारी मानवता मर जाएगी। यदि माता यह सोचे कि बच्चा आग में हाथ डाल रहा है, मुझे क्या? तालाब नदी, कुएं में गिर रहा है, भूख से व्याकुल होकर रो रहा है तो मुझे क्या? टिंचर या विषैली औषधि पी रहा है तो मेरा क्या बिगड़ता है? तब एक भी बच्चा नहीं बच सकेगा। इस प्रकार प्रत्येक परिवार एवं समूचा मानव परिवार भी यज्ञ भावना पर टिका हुआ है।

यज्ञ का अर्थ एवं व्याख्या

यज्ञ यज धातु से बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है—पूजा संहति लोकोपकार। यज्ञ अपने से बड़ी इकाई के लिए लोक संग्रह की भावना से किया गया समर्पण है। वैदिक काल में यज्ञ अग्निकुण्ड में मंत्रोच्चारण के साथ समिधायें एवं शाकल्य समर्पित करने का एक पूजा अनुष्ठान था। किन्तु भगवद्गीता में भगवान् ने यज्ञ की बड़ी विस्तृत व्याख्या करके इस प्राचीन शब्द को नयी गरिमा प्रदान की है।

(क) कर्तव्य यज्ञ या कर्म यज्ञ

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।। 4/23, गीता

जो व्यक्ति संग रहित अहंता-ममता रहित परमेश्वर परमात्मा के ज्ञान में स्थित रहकर लोक संग्रह रूप यज्ञ की परम्परा सुरक्षित रखने के लिए धर्मों का आचरण करता है वह यज्ञ के लिए कर्म करने वाला है। उसके सम्पूर्ण कर्म यज्ञाग्नि में लय हो जाते हैं अर्थात् उसे कोई भी कर्म बंधन नहीं रहता।

निष्काम कर्मयोग की चतुष्सूत्री भी कर्मयज्ञ है।

सकाम कर्म मनुष्य को चार प्रकार से बांध देता है। कर्म कर्ता को रंग देता है और कर्मासक्ति, फलासक्ति, अहम्कृति (कर्तापन का भाव) में बांध देता है।

इससे भव बंधन बना रहता है। भवाटवी में भटकता रहता है। इसलिए अपने कर्म को निष्काम बना लेना चाहिए।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। 2/47, गीता

कर्मण्येवाधिकारस्ते—हे मानव! कर्म करने में तेरा अधिकार है।

मा फलेषु कदाचन—कर्मफल पर तेरा अधिकार नहीं है।

मा कर्मफल हेतुर्भूर्—फल की वासना से कर्म करने वाला मत बन।

माते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि—अकर्म में भी तू संग मत रख।

निष्काम कर्म में फलासक्ति तो शिथिल हो जाती है पर कर्मासक्ति, अहम्कृति (कर्तापन का भाव) बनी रहती है। पर जैसे-जैसे निष्काम कर्म करता जाता है, चित्त शुद्ध होने लगता है। उसे ब्रह्म संस्पर्श का अनुभव होने लगता है, भगवान् तो यंत्री है मैं यंत्र हूं। भगवान् के दिए हुए तन, मन, धन से प्रभु के रचे हुए जीव और जगत् के प्रति मैं प्रभु की प्रेरणा से कर्म कर रहा हूं। इस प्रकार यह यज्ञार्थ कर्म बन जाता है जो भव बंधन को मिटाने वाला है और प्रभु से मिलाने वाला है।

ब्रह्मयज्ञ

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।। 4/24, गीता

जब समस्त कर्म ब्रह्म को समर्पित हो जाते हैं तब अर्पण भी ब्रह्म हो जाता है। अर्पण की गयी हवि भी ब्रह्म हो जाती है। जिस अग्नि में अर्पण किया जाता है वह अग्नि भी ब्रह्म रूप ही है। जो आहुति देने वाला होता (=आहुति देने वाला) है वह भी ब्रह्म ही है। इसके द्वारा जो प्राप्त होने वाला है वह लक्ष्य भी ब्रह्म ही है। अतः समस्त कर्म ब्रह्म कर्म बन जाते हैं। यह बहुत ऊंची स्थिति है जिसमें कर्ता कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान सभी ब्रह्म रूप हो जाते हैं। गीता के नवम् अध्याय में भगवान् अपना यज्ञ स्वरूप बताते हुए कहते हैं—

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्।। 9/16

अर्थात् मैं ही क्रतु (स्मार्त यज्ञ), मैं यज्ञ (वैदिक यज्ञ) हूं, मैं ही स्वधा (देव स्तुति) हूं, मैं ही औषध यज्ञ में समर्पित की जाने वाली औषधि हूं। मैं ही मंत्र हूं, मैं ही घृत हूं, मैं ही अग्नि हूं तथा मैं ही अग्नि में भस्म होने वाली आहुति हूं। भगवान् पुनः कहते हैं, 'अहम् ही सर्व यज्ञानाम भोक्ता च प्रभुमेवच'।

अर्थात् मैं ही सब यज्ञों का भोक्ता हूं, मैं ही सबका प्रभु हूं। मैं ही मंत्र हूं, मैं ही घृतम्, मैं ही ऋग्-साम-यजुर्वेद हूं। इस प्रकार वेद, वेद के मंत्र, वैदिक यज्ञ

एवं यज्ञ के समस्त उपकरण ब्रह्ममय हैं तथा भगवान् श्रीकृष्ण मूर्तिमान यज्ञ होने के कारण अपने में ही सबका दर्शन करते हैं।

पंच महायज्ञ

वैदिक वाङ्मय में पंच महायज्ञों का निर्देश है—

ब्रह्मयज्ञ—इसमें ब्रह्मज्ञान गर्भित ज्ञानग्रंथों का पठन पाठन एवं स्वाध्याय ही ज्ञानयज्ञ या ब्रह्मयज्ञ अथवा ऋषि तर्पण यज्ञ कहा जाता है। इसे ही गीता में ज्ञानयज्ञ कहा गया है—

स्वाध्यायेन अर्चयेत् ऋषीन्

अर्थात् स्वाध्याय के द्वारा ऋषियों की अर्चना करनी चाहिए।

ऋषि-ऋण चुकाने का भी सबसे श्रेष्ठ मार्ग स्वाध्याय ही है। भगवान् श्रीकृष्ण भी श्रीमद्भगवद्गीता के अन्त में कहते हैं—

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।। 18/70, गीता

अर्थात् जो हम दोनों के इस धर्ममय संवाद को पढ़ेगा, उसके द्वारा (उस) ज्ञानयज्ञ से मैं पूजित होऊंगा—ऐसा मेरा मत है।

देवयज्ञ—देव शक्तियों के लिए अग्निहोत्र करना देवयज्ञ कहलाता है। वेद में इसकी बड़ी महिमा है। वैदिक पद्धति से कोई भी संस्कार करते समय देवयज्ञ (अग्निहोत्र) अनिवार्य रूप से उसके अंग के रूप में सम्मिलित रहता है। परब्रह्म परमेश्वर एक है किन्तु उसका सृष्टि में सृष्टि संचालन का कार्य अनेक दैवीय शक्तियों द्वारा संचालित होता है। जैसे सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु, विश्वदेवा, अश्विनी कुमार आदि। ये सब देव सृष्टि के एक-एक विभाग के संचालक हैं और स्वयं ब्रह्म के अनुशासन में उसकी परमशक्ति द्वारा संचालित होते हैं। इसलिए ब्रह्म का जीवों को प्रत्यक्ष प्रथम परिचय देव शक्तियों द्वारा होता है और जीव ब्रह्म की प्रत्यक्ष प्रथम पूजा इन देव शक्तियों के माध्यम से ही समर्पित कर सकता है। जिस प्रकार देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों के नगरों, ग्रामों एवं वनों तक में भारत सरकार का शासन चलता है किन्तु राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री स्वयं आकर वहां शासन नहीं चलाते वरन् उनके प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल, मुख्यमंत्री, जिलाधीश, अनुमण्डलाधिकारी, ग्राम का सरपंच आदि शासन चलाते हैं। पुलिस के सामान्य सिपाही के अनुशासन को मानना भारत सरकार का सत्कार और अनुशासन भंग करना भारत सरकार का तिरस्कार माना जाता है। इसलिए देव शक्तियों की पूजा उनके प्रति श्रद्धापूर्वक यजन अन्ततोगत्वा ब्रह्म का ही पूजन माना जाता है। ये देव अपनी दिव्यता से प्रकाशमान हैं और सृष्टि के जीवों को

अपने अमूल्य वरदान यज्ञ भाव से देते हैं। यदि सूर्य का प्रकाश, वायु का प्राण, इन्द्र की वृष्टि जीवों के जीवन के लिए जल आदि न मिले तो सब जीव सृष्टि का अन्त हो जाए। अतः सब देव शक्तियों के प्रति श्रद्धापूर्वक अग्निहोत्र करने से मनुष्य उन देव शक्तियों के प्रति अपनी कृतज्ञता सूचित करता है। श्रद्धापूर्वक दिया पत्र-पुष्प, फल, जल अथवा मानसिक नमस्कार तक भी जब भगवान् स्वीकार करते हैं तब श्रद्धापूर्वक समर्पित हवि को भी देव शक्तियां अवश्य स्वीकार करती हैं। प्रश्न मानव के मन की सच्ची भावना का है। आज के युग में भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से सिद्ध हो रहा है कि हजारों मील दूर बैठे हुए व्यक्ति से हम मानसिक संचार (Mental wireless) द्वारा वार्तालाप एवं विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। तब दैवी शक्तियों से अग्निहोत्र के पवित्र मंत्रों द्वारा हम अपना श्रद्धा भाव सम्प्रेषण कैसे नहीं कर सकते। किसी अन्य विज्ञान से तुरन्त प्रमाणित हो या न हो किन्तु मनोविज्ञान से यह प्रत्यक्ष प्रमाणित है। यह मनोवैज्ञानिक सफलता भारत के योगदर्शन का ही एक अंग है। आजकल पश्चिम में इसे Pera psychology, Meta psychology (परामनोविज्ञान) कहा जाता है।

गीता में भगवान् ने कहा है—

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।। 3/11, गीता

तुम लोग देवताओं की श्रद्धा भावना करो और देवता तुम्हारी कल्याण भावना करे। इससे परस्पर एक-दूसरे की भावना करते हुए तुम सब परम कल्याण को प्राप्त करो।

अगले श्लोक में भगवान् कहते हैं—

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।। 3/12, गीता

यज्ञ से संतुष्ट देव तुम्हें इच्छित भोग देंगे और उन्हीं के दिए अनन्त भोगों में से जो व्यक्ति कुछ अंश उसी को समर्पित नहीं करता, वह चोर है।

अगले श्लोक में भगवान् कहते हैं—यज्ञ करके शेष बचे हुए भाग को खाने वाले सज्जन सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। जो केवल अपने लिए ही पकाते हैं वे पाप ही खाते हैं।

अग्निहोत्र की आध्यात्मिक व्याख्या एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्या का अपना महत्त्व है। जो सूर्य भगवान् धरती के नदी-नालों के गंदे पानी का शोषण करके उसे शुद्ध पवित्र जल के रूप में सब जीवों एवं वनस्पतियों को जीवन प्रदान करते हैं उन्हें एक चुल्लूभर जल की जलांजलि देने में हमारी कुछ भी हानि नहीं होती। हम एक

अच्छे कृतज्ञ मानव बनते हैं। सूर्य भगवान् की ज्योति का दर्शन करते हैं। गायत्री से अपनी बुद्धि को पवित्र निर्मल बनाते हैं। सूर्य की ज्योति को अपनी बुद्धि में समा लेने की भावना करते हैं तथा सूर्य को अर्घ्यरूप में समर्पित जलराशि के भीतर से सूर्य का दर्शन करने से हमारे नेत्रों की ज्योति बढ़ जाती है। जो सूर्य हमारी धरती और नवग्रह का केन्द्र है, हमारी धरती और हमारे जीवन का आधार है यदि हम उसे तनिक जल अथवा अग्निहोत्र में हवि समर्पित करते हैं तो हमें हानि कुछ भी न होकर सब दृष्टियों से लाभ ही लाभ मिलता है। सूर्योपासना से अनेक असाध्य रोगों का इलाज व उपचार प्राकृतिक चिकित्सा विधि द्वारा किया जा रहा है।

अग्निहोत्र विवेचन

विस्तृणीकरण—अग्नि का कार्य उसमें डाली हुई वस्तु का विस्तार कर देने का है। जिस प्रकार अग्नि में डाला हुआ कटु पदार्थ (मिर्च) वायुमण्डल में फैलकर सबको प्रभावित करता है उसी प्रकार अग्नि में डाली हुई सामग्री गुग्गुल, जायफल, मुनक्का, मीठे मेवे एवं औषधियां आदि छोटे परमाणुओं में टूट कर वायुमण्डल में व्याप्त हो जाते हैं। अग्नि में डाला हुआ घी परमाणुओं के रूप में सारे घर में फैल जाता है। स्वामी रामतीर्थ ने लिखा है प्रत्यक्ष घी खाने की अपेक्षा घी की सुगंधि शरीर को अधिक पुष्ट करती है। उदाहरणार्थ—हलवाई की दुकान पर कार्य करने वाला कार्यकर्ता निर्धन होते हुए यदि प्रत्यक्ष घी न भी खाए तब भी दुकान पर घी की कड़ाही से उठने वाली सुगंधि द्वारा वह हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। कहा है—

घ्राणाम् अर्धभोजनम्

अर्थात् केवल सूंघना मात्र भी आधा भोजन है। अग्निहोत्र सिद्ध करता है घ्राणाम् सूक्ष्म श्रेष्ठ भोजन। आग में डालने से घी एवं औषधियों के सूक्ष्म परमाणु बन जाते हैं। आग द्वारा वायु गर्म और हलकी हो जाती है। उस हलकी गर्म वायु द्वारा वे सूक्ष्म परमाणु ऊपर उठते हुए सूर्यलोक में चले जाते हैं। भगवान् मनु ने ठीक कहा है—

'अग्नौ हुतं हविः सम्यक् आदित्यं उपतिष्ठति।'

आग में डालने से हवि सूक्ष्म होकर सूर्य तक फैल जाती है।

गुणवर्धन—अग्नि में डालने से पदार्थों का केवल परिमाणवर्धन ही नहीं होता गुणवर्धन भी होता है। आग में डालने से मिर्च केवल फैलती ही नहीं उसकी तेजी भी कई गुणा बढ़ जाती है।

सूक्ष्मीकरण—अग्नि जब पदार्थों को सूक्ष्म परमाणुओं में विभक्त कर देती है तो वे सूक्ष्म परमाणु सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थान तक पहुंचकर अपना प्रभाव दिखाकर अपना प्रभाव डालती है। अग्नि दो काम करती है—गंदगी को जलाकर शोधन

करती है और गुण का विस्तार करती है। यदि मकान में मुर्दा पड़ा सड़ रहा हो तथा मकान में शीलन के कारण रोगों के परमाणु सारे क्षेत्र के लिए घातक बन रहे हों तो अग्नि रोगाणुओं को जलाकर मकान एवं क्षेत्र के वातावरण को शुद्ध कर देगी। यदि अग्नि में गुग्गुल और गंधक डाला जाए तो प्रभाव बड़ा चमत्कारी होगा। इसलिए मृतक का अग्नि संस्कार करना विश्व के स्वास्थ्य की दृष्टि से एक उपयोगी यज्ञ है। यज्ञ के धूम के द्वारा औषधियों के सूक्ष्म परमाणु अनायास ही मकान के छोटे-छोटे छिद्रों में घुसकर उन्हें रोगाणु मुक्त कर देते हैं। मानवों के श्वास द्वारा शरीर में प्रवेश कर अपना प्रभाव दिखाकर उन्हें भी स्वस्थ बनाता है।

वाष्पीकरण—आधुनिक ऐलोपैथी में भी वाष्पीकरण द्वारा उपचार चलने लगा है। प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद, होम्यौपेथी में पहले ही से चलता है। खांसी जुकाम में यूकलिप्टस के तेल की भाप दी जाती है। गले के रोग तथा बोनक्राइटस के लिए टिंचर बेंजीन की भाप दी जाती है। प्राचीनकाल से छाती और फेफड़े के दर्द के लिए हलदी की भाप तथा गुलबनपसा की भाप देने की परिपाटी भारत में प्रचलित है। शीशी में पड़े यूकलिप्टस की अपेक्षा यूकलिप्टस की भाप में प्रभाव एवं औषधि का गुण कई गुणा बढ़ जाता है। इस प्रकार अग्निहोत्र में डाली हुई औषधियों का प्रभाव एवं औषधि का गुण भी बढ़ जाता है।

आयुर्वेद में भस्मों का रस रसायन माना जाता है। लोहा, अभ्रक, मुक्ता, सोना, चांदी आदि सीधा खाने से मनुष्य मर जाएगा। किन्तु अग्नि के माध्यम से उन्हें भस्म कर उन्हें जीवनप्रद रसायन बना लिया जाता है। सौ बार अग्नि में डालने से भस्म शतपुटी और हजार बार डालने से सहस्रपुटी बन जाती है। स्थूल धातु के घटक परमाणु जब अग्नि द्वारा विरल हो जाते हैं तब उनके भीतर निहित शक्ति प्रकट हो जाती है। धातु चिकित्सा द्वारा कठिन से कठिन रोगों का उपचार होता है। आयुर्वेद का धातु भस्म निर्माण एक प्रकार से अग्निहोत्र ही है। केवल मंत्रोच्चारण भर नहीं किया जाता है। अग्निहोत्र में मंत्रोच्चारण आध्यात्मिक मनोवैज्ञानिक भाग है और अग्नि में औषधियों का डालना भौतिक विज्ञान का भाग है।

होमियोपैथी पोटेन्सी वर्धन—अग्निहोत्र में स्थूल पदार्थों की विरलता अग्नि के द्वारा की जाती है। आयुर्वेद में औषधि के परमाणु की विरलता उपलों की अग्नि द्वारा की जाती है। होमियोपैथी में यह कार्य विचूर्णीकरण तथा आलोडन द्वारा किया जाता है। विचूर्णीकरण में औषधि को खरल में डालकर बहुत बारीक पीसा जाता है। जो शक्ति स्थूल पदार्थ में तिरोहित थी, प्रकट हो जाती है। इसे शक्तीकरण Potentization या पोटेन्सी बढ़ाना भी कहते हैं। घर-घर में हम देखते हैं कि बारीक पीसी हुई हलदी, काली मिर्च, ब्राह्मीबूटी में परमाणुओं के सूक्ष्म

हो जाने के कारण शरीर के सूक्ष्म क्षेत्रों में घुसकर जल्दी प्रभाव करती है। यदि पाव भर घी माथे पर रख दिया जाए तो उतना प्रभाव नहीं होता है पर तोला भर घी अच्छी तरह रगड़ दिया जाए तो शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म रोम छिद्रों में घुसकर अपना चमत्कारी प्रभाव दिखाता है। रगड़ने और पीसने से हम ताप (अग्नि) का ही एक रूप पैदा करते हैं।

आलोडन का अर्थ है औषधि को झटके देकर हिलाते-हिलाते उसका मंथन करना। जैसे दही की अपेक्षा मंथन किए मट्ठे में या तक्र में गुण बढ़ जाता है। उसी प्रकार होमियोपैथी में औषधि का एक अत्यन्त सूक्ष्म अंश स्प्रिट में डालकर उसे खूब झटके दिए जाते हैं। मूल औषधि जितनी सूक्ष्म होती जाती है उतनी ही उसकी शक्ति बढ़ जाती है। सूक्ष्म ही स्थूल का संचालन करता है। इसलिए औषधि का विचूर्णीकरण, आलोडन, शक्तिवर्धन सभी अग्निहोत्र के अग्नि द्वारा सूक्ष्मीकरण के सिद्धान्त को ही सिद्ध करते हैं।

सूक्ष्म पदार्थों का स्वास्थ्य पर प्रभाव—मनुष्य का रुधिर जितना शुद्ध होगा उतना ही वह व्यक्ति स्वस्थ होगा। रुधिर फेफड़ों द्वारा शुद्ध होकर शरीर में संचार करता है। यदि फेफड़ों में शुद्ध एवं पौष्टिक वायु पहुंचेगी तो व्यक्ति स्वस्थ होगा और कीटाणु मिश्रित वायु पहुंचेगी तो व्यक्ति अस्वस्थ होगा। एक युवा के फेफड़ों में 230 वर्ग इंच वायु रहती है। साधारण श्वास-प्रश्वास द्वारा 20 से 30 वर्ग इंच वायु बाहर निकलती है। लगभग 200 वर्ग इंच वायु फेफड़ों में जमा रहती है। प्राणायाम द्वारा गहरा प्रश्वास लेने पर 130 वर्ग इंच वायु बाहर निकाली जा सकती है। उससे फेफड़ों में जो रिक्तता उत्पन्न हो जाती है उसको भरने के लिए वातावरण की वायु वेग से भीतर जाती है। यदि यज्ञाग्नि द्वारा औषधि अनुप्राणित शुद्ध वायु फेफड़ों में जाए तो फेफड़ों में घृत और सामग्री की औषधियों का लाभ पहुंचता है। डॉक्टर के परामर्श पर जब हम पहाड़ों अथवा समुद्रतट पर जाते हैं तब भी वहां की शुद्ध ओषजन (ऑक्सीजन) तथा ओजोन (Ozone) द्वारा फेफड़ों को रक्त शोधन में सहायता मिलती है। अग्निहोत्र द्वारा घर बैठे ही उससे अधिक लाभ मिल जाता है।

कार्बन डाइऑक्साइड का आक्षेप—कुछ लोग ये आलोचना करते हैं कि अग्निहोत्र द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड पैदा होती है जो स्वास्थ्य के लिए घातक है। वास्तव में लकड़ियां जलाने से कार्बन डाइऑक्साइड अवश्य पैदा होती है किन्तु उसके साथ रोगनाशक औषधियों की प्रचुर मात्रा सामग्री में डाली जाती है। जैसे कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री, तुलसी, कपूर-कचरी, जटामांसी, गुग्गुल, काश्मीरी धूप, छलपुड़ी, लोंग, नागरमोथा आदि। जहां केवल कार्बन डाइऑक्साइड होगा वहां सिर में चक्कर आकर बेहोशी आ जाएगी।

किन्तु अग्निहोत्र की सुगन्धित वायु में श्वास लेने से बड़ा आराम मिलता है। अतः कार्बन डाइऑक्साइड का प्रभाव औषधि द्वारा निरस्त हो जाता है।

कार्बन डाइऑक्साइड वनस्पति जगत् का भोजन है। कार्बन डाइऑक्साइड कुछ मात्रा में वायुमण्डल में सदा ही रहती है। अतः उससे पूर्ण रूप से बचने का प्रयास करें तो मनुष्य का वायुमण्डल में श्वास लेना कठिन हो जाए।

यदि अग्निहोत्र द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड का तर्क देकर कोई अग्निहोत्र की निंदा करे तो रसोईघर में चूल्हा जलाना ही बंद कर दें। वहां घंटों काम करने पर भी लोग मरते नहीं।

कार्बन डाइऑक्साइड कोई भयानक विष नहीं है। सोडा, लिम्का, कोकाकोला आदि पेय पदार्थों में कार्बन डाइऑक्साइड ही भरी होती है।

अग्निहोत्र के समय जो रोगनाशक गैसें उत्पन्न होती हैं उन्हें उठाकर दूर-दूर तक आसमान में चढ़ा देने का काम कार्बन डाइऑक्साइड ही करती है।

घी के दुरुपयोग का आक्षेप— कुछ लोग कहते हैं महंगाई के जमाने में लोगों को खाने के लिए घी नहीं मिलता तब इन पदार्थों को हवन द्वारा अग्निहोत्र में फूंक देना कहां तक उचित है। डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने लिखा है।

अग्निहोत्र के चार उद्देश्य हैं—

(क) व्यक्तिगत तथा सामाजिक वायुमण्डल को शुद्ध करना।

(ख) व्यक्तिगत तथा सामाजिक रोगों को दूर करना।

(ग) रोग के कीटाणु को नष्ट करना।

(घ) वृष्टि की कमी को दूर करना।

(क) व्यक्तिगत तथा सामाजिक वायुमण्डल का शोधन—अनेक घरों में सीलन से बदबू भरी रहती है, अनेक प्रकार के कीटाणु घर भर में मौजूद रहते हैं। खांसी, जुकाम, गठिया आदि औषधियों का व्यय महीने में सैकड़ों रुपयों में बैठता है। अग्निहोत्र द्वारा वायु को शुद्ध करना डॉक्टर एवं औषधियों के खर्चों की अपेक्षा अधिक सस्ता है। घर की दूषित तथा कीटाणुमय वायु केवल हमें ही रुग्ण नहीं करती वरन् आसपास के लोगों में भी रोग के कीटाणु को पहुंचाती है। अग्निहोत्र से घर की वायु शुद्ध होने के साथ-साथ पास-पड़ोस की वायु भी शुद्ध हो जाती है। वायुमण्डल का शुद्ध हो जाना व्यक्ति तथा समाज के आर्थिक बोझ को हलका करता है।

(ख) अग्निहोत्र द्वारा रोगनाशक तत्त्व हमारे घर के छोटे-छोटे छिद्रों में रोगजनक कीटाणुओं का नाश कर देते हैं। कुछ आलोचक कहते हैं कि यह

फिनाइल या कीटाणुनाशक औषधियों से हो सकता है। किन्तु क्या हम कीटनाशक औषधियों को छत एवं दीवारों के क्षुद्र छिद्रों में डाल सकते हैं? क्या मानव के नाक या मुख में डाल सकते हैं। अग्निहोत्र द्वारा शुद्ध रोगनाशक वायु व्यक्ति के शरीर में, उसके घर के छिद्रों में, पास-पड़ोस के घरों में अपने आप प्रवेश कर जाती है। फिनाइल आदि औषधियां महंगी हैं। प्रतिदिन डालने की प्रथा नहीं है। अग्निहोत्र दैनिक कर्म है। फिनाइल बदबूदार है और यज्ञ की औषधियां सुगन्धित एवं कीटनाशक है।

(ग) हवन द्वारा रोगाणुओं का नाश—जबलपुर के डॉक्टर कुन्दनलाल जो ऐलोपैथी के डॉक्टर थे वे यज्ञ द्वारा क्षयरोग की चिकित्सा करने में सफल हुए। उन्होंने टी.बी. सैनेटोरियम भी खोला। उन्होंने 12 शीशियां ली जिनमें दूध, मांस आदि वस्तुएं भर दी। 6 शीशियों में हवन गैस पहुंचाई गई और दूसरी शीशियों में उद्यान की शुद्ध वायु भर दी गई। उद्यान वाली शीशियों में सड़ांध शीघ्र प्रारम्भ हुआ और शीघ्रतापूर्वक बढ़ने लगा। इसके विपरीत हवन गैस वाली शीशियों में सड़ांध देर से प्रारम्भ हुआ और उसकी गति बहुत धीमी थी। हवन गैस को पानी में मिलाकर गले-सड़े जख्म धोये गए। पहले किसी-किसी क्षत से पीव (मवाद) अधिक निकली फिर क्षत बहुत शीघ्र भरकर सूख गया। अधिक पीव का कारण यह था कि भीतर की गहराई तक का पीव बाहर निकल आया और क्षत सूख गया। डॉ. सत्यप्रकाशानन्द ने अपनी पुस्तक अग्निहोत्र में लिखा है कि हवन सामग्री से फोरमेलडीहाइड (Formaldehyde) गैस उत्पन्न होती है। कुछ अंशों तक कार्बन डाइऑक्साइड भी फोरमेलडीहाइड में बदल जाती है। फोरमेलडीहाइड गैस गीली होने पर एक महान् कीटाणुनाशक गुण वाली गैस है जो अनेक पदार्थों को सड़ने से बचा लेती है। सन् 1886 में लयु तथा फिशर ने यह खोज की। केम्वीयर (Cambier) तथा Brochet ने परीक्षणों से सिद्ध किया कि इस गैस से घर के गर्दे के कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं। Salter Rideal ने इसका 40 प्रतिशत घोल बनाकर परीक्षण किया तो पता चला टाइफस कोलाइल तथा कार्बन के कीटाणु दस मिनट से कम समय में ही नष्ट हो गए। नारियल के तेल में डालने से उसके वाष्प के प्रभाव से शरीर में जुएं नहीं पड़ती। एसरिडील एण्ड इरिडील ने 1921 में एक ग्रंथ प्रकाशित किया Chemical disinfaction and sterlization उन्होंने लिखा कि लड़ाई के समय जिन सैनिकों को देर तक भूमि में खोदी हुई खंदकों में रहना पड़ता है उन्हें कई भूमि कीटाणु आ घेरते हैं। उनसे बचने के लिए ऐसी पेटियों का निर्माण किया जिनमें तीव्र गंध होती है। वे इन पेटियों को अपने शरीर से सटाकर बांध लेते हैं जिससे खंदकों के कीटाणु उन पर प्रभाव नहीं डालते। भारत के ऋषि-मुनि पर्वत की गुफाओं में तथा भूमितल

के नीचे की गुफाओं में हवन करते थे जिससे वातावरण शुद्ध रहे। तीव्र गंध की पेटियां कीटाणुओं को मार सकती है किन्तु स्वयं मानव के लिए भी वह गंध अनुकूल नहीं है। उसके स्थान पर यज्ञ धूम की कीटाणुनाशक सुगंधि दोनों दृष्टियों से अधिक उपयोगी है।

यज्ञ में गुड़, शक्कर, छुआरे, दाख आदि मधुर पदार्थ भी डाले जाते हैं जिससे यज्ञ धूम की सुगंधि घी से मिश्रित होकर मधुर एवं रोचक बन जाती है। वैज्ञानिकों का कथन है कि अग्नि में शक्कर जलाने से (Hay fever) नहीं होता।

प्लूटार्क का कथन है कि आग से वायु शुद्ध होती है। मैक्समूलर लिखते हैं—स्काटलैण्ड में बड़े पैमाने पर आग जलाने की परिपाटी पाई जाती थी। आयरलैण्ड और दक्षिण अमेरीका में महामारी को दूर करने के लिए आग जलाने की प्रथा थी। जापान में होम को धोम कहते हैं। जर्मनी में लेवेन्डर (सुगंधि) की बत्ती जलाई जाती है। पारसियों के धर्म मन्दिर में चन्दन के होम करने की सुगन्धि सदा उठती रहती है।

जब मद्रास में प्लेग फैल रहा था तब डॉक्टर किंग ने हिन्दू विद्यार्थियों को उपदेश दिया कि तुम घी और केसर से हवन करो तो प्लेग का नाश हो जाएगा। श्वेतचंदन का तेल हातशक, सुजाग जैसे भयंकर रोगों में भारत और अमेरीका के डॉक्टर प्रयोग करते हैं। तुलसीदल पचासों रोगों का उपचार है। पण्ढरपुर में विठोबा के मन्दिर के आसपास इतनी तुलसी है कि वहां कभी मलेरिया नहीं होता। घी स्वयं विषनाशक है। फल और सूखे मेवे रोग निवारक एवं पुष्टिकारक हैं। इस प्रकार हवन सामग्री के सूक्ष्म परमाणु रोगों का नाश कर मानव समाज को स्वस्थ बनाते हैं।

यज्ञ द्वारा वर्षा

भगवान् ने गीता में कहा है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।। 3/14, गीता

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।। 3/15, गीता

भूत मात्र अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न पर्जन्य (वृष्टि) से होता है, पर्जन्य यज्ञ से होता है, यज्ञ कर्म से होता है। कर्म विधि के ज्ञान से होता है और ज्ञान अक्षय परमात्मा से उत्पन्न होता है, इसलिए सर्वव्यापक परमात्मा यज्ञ में सदा रहता है।

इसमें भगवान् ने सात पगों में यज्ञ रूप परमेश्वर से सृष्टि का जन्म और पालन दर्शाया है। मूल से प्रारम्भ करें तो नित्य यज्ञ रूप ब्रह्म उससे ज्ञान रूप ब्रह्म,

उस विधि के ज्ञान से कर्म, कर्म से यज्ञ (मनुष्यों द्वारा अग्निहोत्र आदि क्रिया) यज्ञ से पर्जन्य वृष्टि, वृष्टि से अन्न और अन्न से जीव सृष्टि का पालन।

प्रश्न उपनिषद् ने कहा—

'अन्नं वै प्रजापतिः।' 1/14

तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है—

'अन्नं ब्रह्म'

मैत्रेय उपनिषद् में कहा गया है—

प्राणो वा अन्नस्य रसः।

अर्थात् प्राण ही अन्न का रस है। तैत्तिरीय उपनिषद् में यह क्रम लिखा है—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। 2/1 तैत्तिरीय उ.

आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियां, औषधियों से अन्न, अन्न से पुरुष अर्थात् शरीर। यह शरीर अन्न-रसमय है।

पर्जन्य से अन्न की उत्पत्ति—पर्जन्य का अर्थ मेघ, वर्षा, इन्द्र, विष्णु। वर्षा के जल का अन्न उत्पत्ति के लिए कितना महत्त्व है यह सब जानते हैं। एक बार अकबर ने अपने मंत्रियों से प्रश्न पूछा, बारह में से एक निकाल देने पर शेष कितना बचता है। सभी ने उत्तर दिया 11 किन्तु बीरबल ने उत्तर दिया शून्य। इस पर सभी बीरबल की अल्पज्ञता पर हंसने लगे। बीरबल ने समाधान करते हुए कहा कि बादशाह सलामत! इतने बड़े-बड़े मंत्रियों से बच्चों जैसा सवाल थोड़े पूछना चाहते हैं। यह तो बच्चे भी जानते हैं। 12 में से एक निकालने पर 11 बचता है। बादशाह के प्रश्न पूछने का विशेष भाव है। वर्ष में 12 मास होते हैं यदि उनमें से एक श्रावण का मास निकाल दिया जाए, वर्षा न हो तो शेष शून्य ही बचेगा। अन्न के अभाव से अकाल पड़ जाएगा और सब जीव कालकवलित हो जाएंगे। इस प्रकार 12 मासों से एक वर्षा का मास निकाल देने पर वर्ष ही मर जाएगा। वर्ष को वर्ष का नाम ही इसलिए दिया गया है कि वर्ष में वर्षा होती है। अतः यह स्पष्ट है कि पर्जन्य के बिना अन्न नहीं हो सकता। यदि कोई यह कहे कि नदी, नहर, तालाब से सिंचाई करके खेती हो जाएगी तो बिना वर्षा के नदी, नहर, तालाब आदि में जल कहां से आएगा? अतः वृष्टि अन्न सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राकृतिक साधन है।

यज्ञ से पर्जन्य—यज्ञ से वृष्टि भारत की एक प्राचीन परम्परा है। इसका वैज्ञानिक विवेचन आज के वैज्ञानिक युग में अनिवार्य हो गया है। वैदिक ऋषियों ने

यज्ञधूम द्वारा वृष्टि की जो व्याख्या की है वह भी विचारणीय है। उसमें भी विज्ञान छिपा हुआ है। अथर्ववेद में कहा है—**जब यह प्राण अपनी महती गर्जना द्वारा अपना संदेश औषधियों से कहता है उसी समय वे गर्भधारण करती हैं और बहुत बढ़ती हैं। जब योग-ऋतु आती है तब पृथ्वी के सब पदार्थ आनन्दित होते हैं। जब प्राण अपने वृष्टि रूप में इस विस्तृत भूमि पर गिरता है तब पशु आनन्दित होते हैं। वे कहते हैं हमारी शक्ति बढ़ेगी और हमारा अन्न बढ़ेगा। ये औषधियां कहती हैं—प्राण! तुमने हमारी आयु बढ़ा दी और सुगंधित कर दिया। इस प्रकार वनस्पतियों को प्राण प्राप्त होता है। इस प्रकार वृष्टि से ही अन्न प्राणी मात्र को प्राप्त होता है।**

मनु भगवान् कहते हैं अग्नि में दी हुई आहुति आदित्य के पास जाती है, आदित्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न और उससे सब प्रजा की उत्पत्ति होती है। शतपथब्राह्मण में कहा है यदि यजमान की इच्छा हो कि वृष्टि होनी चाहिए तो वह प्रजभ्येष्टि यज्ञ करे। यजमान कहे कि वृष्टि की इच्छा है अतः अध्वर्यु वायु और बिजली का ध्यान करे। अग्निध्र, अभ्रों (मेघों) का ध्यान करे, होता मेघ गर्जना और वृष्टि का ध्यान करे, और ब्रह्मा इन सबका ध्यान करे। ऐसे ज्ञानी ऋत्विज जहां होते हैं और यदि मन से ऐसा ध्यान करते हैं और ऐसा यज्ञ करते हैं तो उनके पवित्र संकल्प से वहां अवश्य वृष्टि होगी। यहां याज्ञवल्क्य मुनि निश्चयपूर्वक कहते हैं वृष्टि अवश्य होगी। यज्ञ में एक व्यक्ति अध्वर्यु होता है। वह यजुर्वेदज्ञ ऋत्विक होता है। अग्निध्र अग्नि की स्थापना एवं व्यवस्था करता है, होता आहुतियां डालता है और यज्ञ का ब्रह्मा पूरे यज्ञ का शासन एवं मार्गदर्शन करता है। वैदिक वाङ्मय साक्षी है कि इस प्रकार से पवित्र मनोबल वाले ऋत्विजों के पवित्र संकल्प से वृष्टि अवश्य होती रही होगी।

यज्ञ द्वारा वृष्टि के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए मेघ और वर्षा की प्रक्रिया का वैज्ञानिक विश्लेषण बड़ा आवश्यक है। महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत में मेघ का नया काव्यात्मक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण एक साथ करते हुए लिखा है—

धूम ज्योति सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः।

क्या धुएं, आकाश, पानी तथा वायु के मेल ही मेघ नहीं बनते हैं?

इसे प्रश्नवाचक छोड़कर कालिदास ने काव्य चमत्कार और वैज्ञानिक दोनों का द्वार खुला छोड़ा है। मेघ में धुआं है, कुछ ज्योति भी है जो मेघों के टकराने से प्रकट होती है। कुछ जल की मात्रा भी है जो वर्षा के रूप में बरसती है। कुछ वायु भी है जो मेघ को आकाश में तैरने में सहायता करती हैं। पर क्या इतना कुछ ही मेघ है या उसमें और भी कुछ है। ये सब तो भौतिक तत्त्व हैं। जो कालिदास के यक्ष का संदेश उसकी प्रिय पत्नी तक नहीं पहुंचा सकते। इसलिए कालिदास

कल्पना करता है कि मेघ में कुछ चेतना भी होनी चाहिए जो दूत बनकर यक्ष का प्रेम संदेश यक्षिणी तक पहुंचा सके। अन्यथा उसका मेघदूत काव्य भैंस के सामने बीन बजाने के समान निरर्थक हो जाएगा। कालिदास का प्रश्न साहित्यिक कल्पना और वैज्ञानिक गवेषणा दोनों का द्वार खुला रखता है। प्रकट रूप से मेघ जड़-भौतिक तत्त्वों का मिश्रण है। किन्तु वेद ने उसे अन्तरिक्ष से धरती पर बरसने वाला कहा है और वह जीवों एवं वनस्पतियों को प्राण देता भी है। वेदान्त के अनुसार एक ही चेतनसत्ता सारी सृष्टि को चला रही है। सांख्य के अनुसार प्रकृति-पुरुष की आज्ञा से सब सृष्टि लीला कर रही है। परम चैतन्य से स्पन्दित होने के कारण उसमें भी चैतन्य की लीला हो रही है। वैदिक दर्शन के अनुसार सूर्य, इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि मात्र भौतिक तत्त्व न होकर ब्रह्म के प्रतिनिधि चेतन देवता हैं। इसलिए तपस्वी ऋत्विजों के पवित्र संकल्प और मनोबल से प्रसन्न एवं प्रभावित होकर दैवी शक्तियां वृष्टि करती हैं। ऐसा वेद का तात्पर्य है। कालिदास ने जल के वाष्पीकरण एवं मेघ वर्षण का विज्ञान सम्मत वर्णन किया है—

रवि पीत जला तपात्पयेपुनरोधेन हि युज्यते नदी।

सूर्य की उष्णता से पानी भाप बनकर उड़ जाता है और वर्षा के रूप में बरसता है। डा. अविनाशचन्द्र दास ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ ऋग्वैदिक इंडिया में लिखा है कि वैदिक काल में यज्ञ द्वारा वर्षा होने की बात तथ्य एवं विज्ञान दोनों द्वारा प्रमाणित होती है। इस जमाने में भी कुछ लोग इच्छानुसार पानी बरसा सकते हैं। सन् 1921 में कैलिफोर्निया में मिस्टर हैटफिल्ड ने कहा कि मैं आकाश से पानी बरसा सकता हूं। वहां के किसानों ने दो हजार पौण्ड देकर अपने यहां पानी बरसाना मंजूर किया। लिखा-पढ़ी हो गई और रुपया बैंक में जमा कर दिया गया। मिस्ट हैटफिल्ड ने एक झील के किनारे सुनसान स्थान में अपनी झोंपड़ी बनाई और अपनी क्रिया प्रारम्भ की। तीसरे ही दिन पानी बरसना शुरू हो गया। मिस्टर हैटफिल्ड ने किसी वैदिक क्रिया विशेष से इच्छानुसार पानी बरसाने की क्रिया सिद्ध कर ली है। वे पानी बरसाने के पांच सौ प्रयोग कर चुके हैं। प्रत्येक बार उनको सफलता मिली है। ऊंचे-ऊंचे टीलों पर, मीनारों पर अग्नि प्रज्वलित कर कुछ अंश ऐसे पदार्थ आहुति के रूप में डालते हैं जिनके योग से वाष्प सघन होकर बरसने लगती है। इन वर्णनों से ज्ञात होता है कि किसी खास प्रकार की क्रिया-यज्ञ से वर्षा इच्छानुसार बरसायी जा सकती है।

वृक्षों का खाद्य—वृक्ष कार्बन डाइऑक्साइड गैस को खाते हैं और वृष्टि के जल को पीते हैं। हम देखते हैं यज्ञ अपने धुएं से कार्बन और वृष्टि की रचना एक साथ ही करते हैं। यह दोनों पदार्थ वृक्षों के खाने और पीने के काम में आते हैं।

विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि वायु में जो धूल उड़ा करती है वही ऑक्सीजन और हाइड्रोजन बनाकर पानी बनाने के लिए जामन का काम करती

है। यज्ञ द्वारा यह धूल कीटाणु मुक्त होकर ऊपर उठती है और जल बरसाने में सहायक होती है।

यज्ञ के द्वारा घी के सूक्ष्मतम परमाणु ऊपर उठते हैं तथा बादलों में जो बहुत सूक्ष्म जल के कण तैरते रहते हैं उन कणों को मिलाकर बड़ी जल की बूंद बनाने में सहायक होते हैं। इसे मेघों का जल बीजीकरण (Seedling of cloud) कहा जाता है। वैसे तो धुआं भी वृष्टि का सहायक कारण है। किसी जंगल में आग लग जाने पर जब लाखों टन धुआं आकाश में उड़ता है वह शीघ्र ही वर्षा लाने में सहायक होता है। जंगलों एवं पहाड़ों में गर्मी की ऋतु में जब गर्मी असह्य हो उठती है तो वनवासी एवं ग्रामवासी कृषक जंगल के घास-फूस एवं पिछली खेती के सूखे हुए डंठल को आग लगा देते हैं इससे गर्मी के ताप को शांत करने के लिए शीघ्र ही वर्षा आ जाती है।

घी और पानी दोनों सर्दी में जम जाते हैं और गर्मी में पिघल जाते हैं। पानी की अपेक्षा घी बहुत कम ठण्डक में जम जाता है। हवन द्वारा घी के सूक्ष्म अणु सूक्ष्मतम होकर आकाश में ऊंचे उठते हैं तो वायु में डोलने वाले बादलों में तल के पास पहुंचकर स्वयं जम जाते हैं। और अपने जमने से जल के सूक्ष्म बिन्दुओं को जमाकर वर्षा करने में सहायक होते हैं। जल का वाष्प गर्म एवं हलका होता है। समुद्र से सूर्य के ताप द्वारा जल वाष्पीकृत होकर ऊपर उठता है। चौके-चूल्हे में भी खाना पकाते समय जल वाष्प बनकर ऊपर उठता है। जब लकड़ी, वनस्पतियां, फल और सूखे मेवे अग्नि में जलते हैं तो उनके भीतर जलीय तैलीय अंश धूम के साथ ऊपर उठता है। सूक्ष्म बादल ठण्डी हवा के समान आकाश में हवा की गति के साथ इधर-उधर तैरता रहता है। वह श्वेत धुनी हुई रुई के समान आकाश मण्डल में सुन्दर चित्राकृति बनाता हुआ विचरण करता रहता है। घना बादल तनिक श्यामल रंग होकर वर्षा के लिए प्रस्तुत रहता है। घना काला बादल अपने भीतर के जल के भार को वहन न कर सकने के कारण बरस पड़ता है। वाष्प को बादल बनाकर बरसाने में ठण्डक या सूक्ष्म जल बिन्दुओं को जल का बीजीकरण करके बरसाने वाला कोई माध्यम सहायक होता है। यदि पानी की उबलती हुई केतली के ऊपर कुछ ऊंचाई पर एक चीड़ के वृक्ष की टहनी रखी जाए तो केतली से ऊपर उठने वाला वाष्प उसको स्पर्श करते ही बरसने लगेगा। चीड़ के वृक्ष पर्वतों में लगभग 6 हजार फुट की ऊंचाई पर पाए जाते हैं। चीड़ के वृक्ष की टहनी के स्थान पर यदि किसी अन्य वृक्ष की टहनी रखी जाए तो भी वाष्प का जल बीजीकरण होगा। किन्तु तनिक देर से। रसोईघर में दाल की केतली के ढक्कन के भीतर की ओर जो जलबिन्दु जमा हो जाते हैं वह भी एक प्रकार की वर्षा का रूप हैं। कांच के गिलास में बर्फ डालने से वायुमण्डल में जो जलकण तैर रहे हैं वे ठण्डे ग्लास के

बाहर जलकणों के रूप में प्रकट हो जाते हैं। इसलिए ऊंचे पहाड़ों और जंगलों की अधिकता वर्षा कराने में सहायक होती है।

विज्ञान ने कृत्रिम वर्षा के कई सफल प्रयोग किए हैं। प्रयोगशाला में तथा बाहर प्रकृति के खुले प्रांगण में भी। यह प्रयोग करके देखा गया है कि यदि उठती हुई भाप या तैरते हुए सूक्ष्म बादलों पर Silver nitrate (चांदी के शोरे पर तेजाब के घोल) की फुहार की जाए तो सूक्ष्म जल बिन्दुओं का जल बीजीकरण होकर वर्षा होने लगती है। चांदी तथा चांदी का तेजाबी घोल महंगा होने के कारण कृत्रिम रूप से वर्षा कराना बहुत महंगा पड़ता है। वैज्ञानिकों ने इस विषय में कई प्रयोग किए हैं। इनकी धारणा है कि यज्ञधूम से होने वाली वर्षा कृत्रिम वर्षा की सबसे सरल विधि है।

आजकल रॉकेट के आविष्कार के बाद कृत्रिम वर्षा पर बड़े पैमाने पर प्रयोग होने शुरू हो गए हैं। यदि कोई बादल आकाश में वायु के दबाव से सूखे प्रदेश के ऊपर तैरता हुआ अन्यत्र किसी ओर दिशा में जाने वाला हो तो रॉकेट द्वारा उस बादल को अपेक्षित स्थान पर भेदन करके और उसके ऊपर औषधियां बरसाकर कृत्रिम वर्षा में सफलता पाई गई है।

जिस प्रकार से प्राचीनकाल में इन्द्र ने काले मेघ रूपी वृत्रासुर का वज्र से भेदन कर उसमें छिपी हुई जलधाराओं को मुक्त कर दिया उसी प्रकार आजकल तोपों या रॉकेटों द्वारा मेघ रूपी वृत्रासुर का भेदन कर अपेक्षित स्थान पर जल बरसा लिया जाता है। चांदी के तेजाबी घोल के स्थान पर पिघले हुए मोम की फुहार भी उपयोगी सिद्ध हुई है। यह घी के सूक्ष्म कणों वाले यज्ञधूम के समान कार्य करती है। अब और प्रयोग करते हुए यह पाया गया है कि सागर के नमकीन जल की फुहार करने से भी मेघ का जल बीजीकरण हो जाता है। यह सबसे सस्ती विधि है।

यज्ञ के वर्षा के अतिरिक्त अन्य लाभ (वातावरण शुद्धि, कीटाणुनाश, रोग मुक्ति, विश्वकल्याण आदि) मोम के घोल या नमकीन पानी के छींटने से नहीं प्राप्त होते हैं।

पितृ यज्ञ

पितृ यज्ञ—अपने पितरों-पूर्वजों, माता-पिता आदि बड़ों के हित के लिए, उनके सुख के लिए अपने व्यक्तिगत सुखों का उत्सर्ग करना। उनकी सेवा के लिए अपने सुख साधनों का भाग प्रदान करना पितृ यज्ञ कहलाता है। जीवित पितरों की सेवा और मृत पितरों की स्मृति में उनके कल्याण के लिए दान-पुण्य आदि करना पितृ यज्ञ के ही अंग हैं। पितृ तर्पण में अपने पितरों को जल दिया जाता है। एक तो इससे उनके प्रति कृतज्ञता का भाव बना रहता है और दूसरा मानव के मन को उनकी स्मृति से प्रेरणा मिलती रहती है। उनके गुण मानव में आते हैं।

भगवान् ने कहा है—

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः। 9/25, गीता

अर्थात् पितरों के प्रति व्रत में बंधे हुए लोग पितरों के गुणों को ही प्राप्त करते हैं। वीर पूर्वजों का स्मरण कर मनुष्य वीर बनता है। दानी पूर्वजों का स्मरण कर मनुष्य दानी बनता है। जो पितरों को साधारण जल तक भी समर्पण नहीं करते ऐसे कृतघ्न लोगों के विषय में गुरु नानकदेव ने कहा है—

आप न देइ चुलुभर पानी
निंन्दय सई जे गंगा आनी।

अर्थात् कृतघ्न लोग स्वयं तो अपने पूर्वजों को चुल्लूभर पानी नहीं दे सकते और निन्दा उस राजा भगीरथ की करते हैं जो अपने पितरों के उद्धार के लिए स्वर्ग से गंगा को खींचकर भूतल पर ले आया। जो स्वयं अपने पूर्वजों को मान नहीं दे सकते उनकी आगामी पीढ़ियां उन्हें भी धिक्कारती रहती है। औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहां को आगरा के किले में बंदी करके रखा था। वहां एक छोटी-सी मस्जिद भी थी। बादशाह के लिए छोटा कमरा। हाथ में हथकड़ी और पांव में डण्डाबेड़ी। बादशाह के लिए एक कटोरी भीगा चना पड़ा रहता था। बादशाह को पशु की तरह मुंह के पास लगाकर खाना पड़ता। अन्य एक कटोरी में पानी रहता था। उसको भी इसी तरह पीना पड़ता था। एक दिन भयंकर गर्मी की दुपहरी में शाहजहां को भीषण प्यास लगी थी। डण्डाबेड़ी को खींच-खींच कर बहुत कष्ट से पानी की कटोरी के पास जाकर कुत्ते की तरह चुभक-चुभक कर जल पीने के लिए कटोरी को मुंह लगाया। ठीक उसी समय इधर-उधर से घूमता-फिरता औरंगजेब वहां आकर उपस्थित हुआ। इस दृश्य को देखकर कौतुक हुआ। उसने सोचा एक रूढ मजाक किया जाए। वह भीतर गया और जाकर उस पानी की कटोरी को लात मार कर तोड़ दिया। शाहजहां, जो एक दिन सारे भारत का बादशाह था, वह आज अपने पुत्र के हाथ बंदी था। जल नहीं पी पाने के कारण बादशाह रो पड़ा और कहा—

ऐ पिसर तू अजब मुसलमानी,
ब पिदरे जिंदा आब तरसानी।

आफरीन बाद हिंदवान सद बार,
मैं देहंद पिदरे मुर्दारावा दॉयम आब।।

अरे बेटा, तू एक अद्भुत मुसलमान है। जिंदा बाप को जल नहीं पीने देता। हिन्दूजन को शत बार धन्यवाद क्योंकि वे अपने मृत पितृ पुरुष को भी तर्पण करके जल देते हैं।

नृयज्ञ—मानव-जाति के हित के लिए नृयज्ञ किया जाता है। इसी का दूसरा नाम अतिथि सत्कार यज्ञ है। अतिथि ऐसा व्यक्ति है जो बिना पूर्व सूचना के बिना तिथि के हमारे गांव में अथवा हमारे द्वार पर आ जाए। आजकल किसी विशिष्ट आदमी के पूर्व सूचनानुसार पहुंचने पर उसे अतिथि या विशिष्ट अतिथि कहते रहते हैं। वास्तव में ऐसा व्यक्ति अतिथि न होकर अभ्यागत है। परिचित मित्र, बंधु, गोतिया भी बाहर से आने पर अभ्यागत की कोटि में आएंगे। अतिथि तो प्रायः अपरिचित, बिना पूर्व सूचना के बिना तिथि के अकस्मात् हमारे द्वार पर आ जाने वाला व्यक्ति है। वेद का वचन है 'अतिथि देवो भव:' अर्थात् अतिथि को देवता मानो। अतिथि सत्कार, अतिथि पूजा, अतिथि सेवा, अतिथि धर्म भारतीय संस्कृति की बड़ी दिव्य परम्परा रही है जिसकी महिमा मैगस्थनीज (यूनानी यात्री) ह्वेनसांग, फाहियान आदि चीनी यात्रियों ने भी गायी है। यहां अतिथियों को पानी मांगने पर आदरपूर्वक दूध भेंट किया जाता है। राजा रन्तिदेव ने अपना भोजन अतिथि को देकर स्वयं भूख से प्राण देना भी श्रेयस्कर समझा।

युधिष्ठिर ने एक यज्ञ किया और यज्ञ करने के पश्चात् बड़े संतोष से बैठे हुए थे कि कितना महान् यज्ञ किया? कितना इसके अन्दर दान दिया, कितना ऐश्वर्य, कितने वैभव के साथ सम्पन्न हुआ। इतने में ही वहां पर एक नेवला आया। उसका आधा शरीर सोने का था। वह आकर यज्ञ के बचे हुए अन्न, भस्म आदि में लोट-पोट करने लगा। सभी देखने लगे कि अचानक ये कैसा विचित्र जीव आया और आकर के लोट-पोट कर रहा है। और उसके बाद मनुष्य की वाणी में बोला, अरे! यह यज्ञ बेकार है, यह क्या यज्ञ है? ये कुछ नहीं है। तब कृष्ण भगवान् ने उसे बुला करके पूछा, कि तू कौन है और कैसे कहता है कि यह यज्ञ कुछ नहीं हुआ? युधिष्ठिर ने कितना महान् यज्ञ किया, कितना दान दिया, कितना तप किया, इसके अन्दर कितने लोगों का सम्मान हुआ, कितने वैभव से पूर्ण यह यज्ञ हुआ और तू कहता है कुछ नहीं हुआ। यह बात कैसे कह रहा है?

तब नेवला बताने लगा। कुछ भी खाने को नहीं था। मैं इधर-उधर भटक रहा था। तब मैं एक घर के अन्दर गया और वहां एक दृश्य को देखा। वहां पर कुछ सत्तू के घोल को लेकर एक परिवार खाने को बैठा था। इतने में द्वार पर एक याचक वहां पर आ गया और कहा कि मैं भूखा हूं। अकाल था। बड़ी मुश्किल से उन्हें थोड़ा सत्तू मिला था। उसको खाने वाले ही थे कि याचक आ गया और सबने (पति-पत्नी, पुत्र-पुत्रवधू) अपना-अपना हिस्सा दे दिया। याचक तृप्त होकर चला गया। और वे चारों हरिशरणम् हो गए। दिव्य लोक चले गए। याचक के भोजन के दौरान जो दो-चार कण धरती पर गिर गए उस पर लोट-पोट होने से मेरा आधा शरीर सोने का हो गया। इसलिए उस यज्ञ के सामने युधिष्ठिर का यज्ञ कुछ भी नहीं है।

भूतयज्ञ

भूतयज्ञ—समस्त भूत प्राणियों के कल्याण के लिए समर्पण करना भूतयज्ञ कहा जाता है। बलि को वैश्वदेव भी कहते हैं। इसका अर्थ है विश्व देवताओं को पूजते हुए छोटे-बड़े सभी जीवों के कल्याण के लिए बलि अर्थात् समर्पण करना। गो के लिए, कुत्ते के लिए, कौओं के लिए, जलचरों के लिए कुछ अन्न की बलि देना बलिवैश्वदेव कहलाता है। यह भूतयज्ञ है।

यज्ञोपवीत पंच महायज्ञ करने के लिए पात्रता देने वाला संस्कार है। इससे मनुष्य यज्ञ के उपवीत होता है। वह पंच महायज्ञ करे तथा सम्पूर्ण जीवन को यज्ञमय बनावे। यह इस संस्कार का भाव है।

इन पंच महायज्ञों से मानव परमेश्वर के लिए, ऋषियों के लिए, देवताओं के लिए, पितरों व मानव मात्र के लिए, जीव मात्र के लिए, विश्व कल्याण के लिए अपने कर्मों को अपने सुख साधनों को समर्पित करने वाला आदि मानव बनता है। जो अजातशत्रु और विश्व मित्र बन जाता है। उसे वैश्वानर (विश्वमंगलकारी Universal man) भी कहा जाता है।

गीता में यज्ञ, दान और तप की महत्ता

गीता के 18वें अध्याय में अर्जुन भगवान् से प्रश्न पूछता है कि त्याग और संन्यास में क्या अन्तर है और क्या संन्यासी या वीतरागी पुरुष को यज्ञ, दान और तप भी त्याग देना चाहिए। उत्तर में भगवान कहते हैं कि कई विद्वान् काम्य कर्मों के न्यास (त्याग) को संन्यास कहते हैं। और समस्त कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। यहां भगवान् दूसरे विद्वानों का मत प्रस्तुत कर रहे हैं। इसका भाव यह है कि गृहस्थी को त्यागी होना चाहिए और गृहस्थ से वैराग्य प्राप्त किए व्यक्ति को संन्यासी। त्याग वही कर सकता है जो संग्रह करे, गृहस्थी कमाता है, संग्रह करता है। उसे त्याग भी करना चाहिए। जो संग्रह ही नहीं करता, जिसने अपना जीवन ही भगवान् के लिए समर्पित कर रखा है उसका जीवन भी त्यागरूप, यज्ञरूप है। गृहस्थी को त्यागी और संन्यासी को ज्ञानी होना चाहिए।

फिर भगवान् कहते हैं कुछ संन्यासी यह समझते हैं कि समस्त कर्म कुछ न कुछ दोष से मिश्रित होते हैं इसलिए सब कर्म ही त्याग देना चाहिए। गीता का यह मत है कि प्रथम तो यह सम्भव नहीं कि मनुष्य सब कर्म त्याग सके। यदि वह यज्ञ, याग आदि कर्म त्याग भी देवे तो भी उठना-बैठना, खाना-पीना, हिलना-डुलना, श्वास लेना आदि ये कर्म तो चलते ही रहते हैं। शरीरधारी के लिए इनसे बचना ही असम्भव है। अत: भगवान् कहते हैं कि बिना कर्म के कोई क्षण भर भी टिक नहीं सकता। वैदिक कर्मकाण्ड एवं पूर्वमीमांसा में कर्म का अर्थ नित्य, नैमित्तिक

कर्म ही लिया गया। किन्तु गीता में भगवान् ने कर्म की बड़ी व्यापक व्याख्या करके जीव को इच्छित-अनिच्छित सभी कर्मों को शास्त्रविहित एवं शरीर निर्वाह के प्राकृतिक क्रिया-कलाप आदि सभी को कर्म की श्रेणी में गिना है।

यज्ञ के मूल प्रेरक यज्ञ भगवान्—इस परमेश्वरी नियम का अवलोकन कर ईश्वर के सर्वत्र चलने वाले यज्ञ सूत्र को देखकर मनुष्य को चाहिए कि वह स्वेच्छा, आत्मसमर्पण यज्ञ करे। वह स्वयं जगत् की भलाई के लिए अपनी शक्ति जितना यज्ञ करे। प्राचीन लोगों के द्वारा लगाए गए वृक्षों का फल मनुष्य खाता है। उसका कर्तव्य है कि वह स्वयं नए वृक्ष लगाए जिनके फल भविष्य में आने वाले मनुष्य खा सकें।

गीता में यज्ञ का व्यापक अर्थ—वैदिक आदर्श और वैदान्तिक आदर्श

गीता में यज्ञ का व्यापक अर्थ—जहां वेद में यज्ञ का मुख्य अर्थ होम हवन रूप यज्ञ है वहां गीता में इसका अर्थ आत्मसमर्पण यज्ञ है। अपने से बड़ी इकाई के लिए आत्मसमर्पण ही यज्ञ का मूल भाव है। होम, हवन, अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मकाण्ड हैं जिसमें मनुष्यों और देवताओं के परस्पर आलम्बन के द्वारा इहलोक में सांसारिक भोग और परलोक में परमश्रेय की प्राप्ति का सक्रिय आदर्श है। वैदान्तिक आदर्श है मुक्त पुरुष का कठोरतम आदर्श जो आत्मा के स्वातंत्र्य में स्थित है। जिसे भोग अथवा कर्म या मानव जगत् से या दिव्य जगत् से कुछ मतलब नहीं है। जो परमात्मा की शान्ति, ब्रह्म के शांत आनन्द में रमण करता है। यह गीता के ज्ञान योग का आदर्श है। निष्काम कर्मयोग या कर्मयज्ञ वैदिक आदर्श और वैदान्तिक आदर्श के बीच की समन्वय की सीढ़ी है। भगवान् जब कहते हैं कि ब्रह्मा ने यज्ञ के साथ सृष्टि को उत्पन्न किया तथा आदेश दिया कि इसके द्वारा तुम फूलो-फलो तो यह वैदिक कर्मकाण्ड की वैदिक यज्ञ याग की गीता द्वारा पुष्टि है। जब यह कहा गया कि मानव देवताओं की भावना करे तो देवता मानवों का कल्याण करे और परस्पर एक-दूसरे का कल्याण करते हुए दोनों परम पद को पावें तो यह भी वैदिक कर्मकाण्ड यज्ञ याग आदि की पुष्टि है। यह सकाम यज्ञों (मानव के देवता से कुछ प्राप्त करने) की प्रणाली का वर्णन है। यह एक छोटा आदर्श है। हम देवताओं को हवि दें और देवता हमें वरदान दें। ये मानव और देवों का परस्पर लेन-देन का सौदा है। गीता एक महान् समन्वय शास्त्र है। अत: गीता ने इस मत को भी स्थान दिया है। किन्तु यही गीता के यज्ञ का सर्वोच्च आदर्श नहीं है। जिसे देवताओं से कुछ भी पाने की इच्छा न हो क्या वह यज्ञ न करे। गीता के मत में उसका भी यज्ञ करना अनिवार्य है। भगवान् स्वयं कहते हैं तीनों लोक में मुझे कुछ भी प्राप्त करने को शेष नहीं है। मेरे पर कर्तव्य का शासन भी नहीं है। फिर भी मैं लोक संग्रह के लिए यज्ञ भावना से निरन्तर कर्तव्य करता रहता हूं। जिससे लोक शिक्षण, लोक कल्याण होता रहे तथा अनुकरणशील संसार को अनुकरण करने योग्य उत्तम आदर्श प्राप्त हो सके।

वैदिक आदर्श सकाम भाव से यज्ञ करने की शिक्षा देता है जैसे पुत्रेष्टि यज्ञ, राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, वृष्टि यज्ञ आदि। वेद के उपनिषद् भाग में यज्ञों की ज्ञानपरक एवं त्यागपरक व्याख्या की गई है। वह यज्ञ निष्कामता की ओर इंगित करते हैं। वेदान्त ने समझाया कि संसार के किसी भी सुख-साधन, भोग-योग के लिए यज्ञ याग आदि कर्मों से अधिक से अधिक संसार सुख या स्वर्ग मिलेगा। इससे दु:खों की आत्यन्तिक निवृत्ति होकर मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। वेदान्त के ज्ञानयोग में बताया कि हमारा लक्ष्य भोग नहीं भगवान् है। अत: ज्ञान साधना द्वारा भगवान् को जानना और उसके साथ तदाकार हो जाना यही जीवन का लक्ष्य है। इसलिए इस निवृत्ति मार्ग में प्रवृत्ति यज्ञ याग आदि का कोई स्थान नहीं। इसलिए शंकर वेदान्त मत के संन्यासी यज्ञ-याग आदि कर्मकाण्ड से अलग रहते हैं। गीता में भगवान् ने यज्ञ की व्यापक व्याख्या करके द्रव्यमय यज्ञ से ज्ञानमय यज्ञ तक एक सीढ़ी लगा दी जिससे द्रव्यमय यज्ञ वाला दान द्वारा समाज कल्याण करते हुए, अन्न यज्ञ द्वारा अतिथि सत्कार एवं निर्धनों की अन्न सेवा करते हुए, प्राणापाण यज्ञ द्वारा योगी अपने प्राण को प्राण परमेश्वर के प्रति समर्पित करते हुए और कर्म यज्ञ द्वारा अपने समस्त कर्मों एवं कर्मफलों को भगवान् के प्रति समर्पित करते हुए तथा ज्ञान यज्ञ द्वारा अपने चिन्तन एवं मनन को भी भगवान् के चरणों पर चढ़ाते हुए अन्त में परमप्रभु परमेश्वर को ही पा लेवें। इस प्रकार यज्ञ की सीढ़ी से वैदिक कर्मकाण्ड के आदर्श से ब्रह्म ज्ञान के वैदान्तिक आदर्श तक मानव मात्र उन्नति कर सकता है।

परम पूज्य मेरे परदादा गुरुजी स्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज का बीकानेर में चातुर्मास-सत्संग आयोजित था। गणेश चतुर्थी पर मृण्मय गणेश मूर्ति की प्रतिष्ठा करके उसकी पूजा-अर्चना का क्रम चल रहा था। अनन्त-चतुर्दशी के दिन उस गणेश मूर्ति का किसी जलाशय में विसर्जन होना था। उस वर्ष वर्षाभाव के कारण बीकानेर के सभी जलाशय सूखे पड़े थे। भक्तों ने पूज्य श्री मेरे परदादा गुरुजी महाराज से प्रार्थना की—'महाराज! वर्षा करवाइये, अन्यथा विसर्जन कैसे होगा? पूज्य श्री परदादा गुरुजी महाराजजी ने विद्वान पण्डितों को 'कारीरी यज्ञ' प्रारम्भ करने का निर्देश दिया, और स्वयं ने केवल दुग्धाहार करने का व्रत लिया। यज्ञ की पूर्णाहुति हो चुकने पर भारी वर्षा हुई और सभी जलाशय भर गये। भक्तजन आह्लादित हुए। अनन्त चतुर्दशी के दिन गणेश-विग्रह का विसर्जन सानन्द सम्पन्न हुआ।